गोरखनाथ कृषि दर्पण

(अर्धवार्षिक)

महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

चौकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर, - 273165 (उ०प्र०)

संस्करण- प्रथम, अंक 2 (जुलाई- दिसम्बर 2019)

गोरखनाथ कृषि दर्पण

(अर्धवार्षिक)

संस्थापक एवं संरक्षक

पूज्यनीय गोरक्षपीठाधीश्वर श्री योगी आदित्यनाथ जी महाराज

प्रो. यू. पी. सिंह

उपाध्यक्ष

महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

योगी कमलनाथ जी

सचिव

महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

सम्पादक मण्डल

प्रधान संपादक

राजेन्द्र प्रताप सिंह

(वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष)

संपादक

राहुल कुमार सिंह

(विषय वस्तु विशेषज्ञ—कृषि प्रसार)

अवनीश कुमार सिंह

(विषय वस्तु विशेषज्ञ—सस्य प्रसार)

सह संपादक

विवेक प्रताप सिंह

(विषय वस्तु विशेषज्ञ—पशु विज्ञान)

अजीत कुमार श्रीवास्तव

(विषय वस्तु विशेषज्ञ—उद्यान)

संदीप प्रकाश उपाध्याय

(विषय वस्तु विशेषज्ञ—मृदा विज्ञान)

संकलन एवं सहयोग

गौरव कुमार सिंह

(कार्यक्रम सहायक —कंप्यूटर)

गंगेश गिरि

(स्टेनोग्राफर)

विषय -सूची

क्रम संख्या	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	**अब होगी किसानों की आय दुगुनी** डॉ. राहुल कुमार सिंह	7-11
2.	**अरहर की उत्पादन तकनीक** श्री अवनीश कुमार सिंह	12-16
3.	**किसानों की सफलता का मंत्र – कम्बाइन हार्वेस्टर यंत्र** श्री अवनीश कुमार सिंह	17-22
4.	**इन तरीको से करें खेती के लिए जल संरक्षण** डॉ. आर. पी. सिंह	23-24
5.	**तुलसी की खेती** डॉ. अजीत कुमार श्रीवास्तव	25-27
6.	**दुधारू पशुओं की देखभाल** डॉ. विवेक प्रताप सिंह	28-32
7.	**पशुओं में थनैला रोग एवं उपचार** डॉ. विवेक प्रताप सिंह	33-36
8.	**प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना पर ड्रॉप मो क्रॉप-माइक्रो इरीगेशन** डॉ. राहुल कुमार सिंह	37-40
9.	**फसल सुरक्षा के लिए बायोपेस्टिसाइड्स का प्रयोग** डॉ. आर. पी. सिंह	41-47

10. **मक्का की उन्नत खेती** 48-53
श्री अवनीश कुमार सिंह

11. **उन्नत मत्स्य पालन तकनीक** 54-57
डॉ विवेक प्रताप सिंह

12. **संतुलित भोजन के लिए उगायें पोषण वाटिका में फल एवं सब्जियाँ** 58-62
डॉ. राहुल कुमार सिंह

13. **कृषि मशीनरी : किसानों के लिए वरदान** 63-68
डॉ. आर. पी. सिंह

14. **सब्जियों के तुड़ाई उपरान्त भंडारण एवं गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले तुड़ाई पूर्व कारक** 69-77
डॉ. अजित कुमार श्रीवास्तव

15. **फसलो में पोषक तत्वों की महत्ता एवं कमी के लक्षण** 78-83
श्री संदीप प्रकाश उपाध्याय

परिचय

कृषि विज्ञान केन्द्र की स्थापना कृषि एवं सम्बन्धित विषयों की नवीनतम तकनीकों के हस्तान्तरण एवं प्रसार द्वारा जनपद के सर्वांगीण विकास हेतु गोरखनाथ सेवा संस्थान के नियंत्रण में गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्यनीय महंत श्री योगी आदित्यनाथ जी द्वारा की गई।

इस केन्द्र का शिलान्यास 23 अक्टूबर 2016 को माननीय केन्द्रीय कृषि मंत्री, कृषि एवं किसान मंत्रालय, भारत सरकार श्री राधा मोहन सिंह जी द्वारा किया गया। यह केन्द्र भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-कृषि प्रौद्योगिक अनुसंधान संस्थान द्वारा वित्त पोषित है। यह केन्द्र गोरखनाथ की पवित्र धरती पर स्थापित होने ई वजह से इस केन्द्र का पूरा नाम महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र रखा गया। यह केन्द्र गोरखपुर जनपद से 35 कि०मी० दूरी पर पीपीगंज रेलवे स्टेशन से 08 कि०मी० दूरी पर स्थित है। पीपीगंज गोरखपुर-सोनौली मार्ग पर स्थित है।

महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र जनपद की कृषि सम्बन्धी आवश्यकतो की पूर्ति हेतु कृषकों की सेवा में तत्पर रहेगा। केन्द्र के समस्त तकनीकी हस्तान्तरण कार्यक्रम "करके सीखों" एवं देखकर विश्वास करो के सिद्धान्त पर संचालित किया जा रहा है तथा प्रौद्योगिकी में निहित वास्तविक दक्षता को सिखाने पर बल दिया जाता है।

यह केन्द्र एक ऐसी वैज्ञानिक संस्था के रूप में किसानों के बीच ऊभर आयेगी जहाँ किसानों एवं कृषि कार्य में संलग्न महिलाओं एवं ग्रामीण युवकों/युवतियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाना शुरू हो चूका है। प्रशिक्षण मुख्यतः फसलोत्पादन, पौध सुरक्षा, गृह विज्ञान, पशुपालन, उद्यानिकी, कृषि अभियान्त्रिकी, तथा अनेक कृषि सम्बंधित विषयों में दिया जाता है। संस्था द्वारा किसानों के ही खेतों पर किसानों को शामिल करते हुए वैज्ञानिकों की देख-रेख में उन्नत तकनीकी का परिक्षण किया जाता है तथा कृषकों एवं विस्तार कार्यकर्ताओं के समक्ष आधुनिकतम वैज्ञानिक तकनीक का अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन किया जाता है। कृषि विज्ञान केन्द्र वैज्ञानिकों, विषय

वस्तु विशेषज्ञों , विस्तार कार्यकर्ताओं तथा कृषकों की संयुक्त सहभागिता से कार्य करता है । इस केन्द्र में प्रशासनिक भवन, प्रशिक्षण हॉल, पुस्तकालय, फसलों, सब्जियों एवं चारा की उन्नतशील तकनीकी का प्रदर्शन तकनीकी पार्क में किया गया है। इसके अतिरिक्त किसानों हेतु वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन, मौनपालन, मशरुम उत्पादन पशु चॉकलेट व पोषक वाटिका प्रदर्शन इकाई स्थापित है ।

अब होगी किसानों की आय दुगनी

डॉ. राहुल कुमार सिंह (कृषि प्रसार)

भारत एक कृषि प्रधान देश होने के साथ–साथ दुनियां की छठवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था का राष्ट्र है । मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्र भारत में कृषि अर्थव्यवस्था की प्रमुख आधार मानी जाती है । भारत की किसान अदम्य साहस एवं अतुलनीय परिश्रम का प्रतिबिम्ब है । मैं (लेखक) कृषक को कृषि के सम्राट की संज्ञा देता हूँ । जहाँ एक ओर भारत का किसान देश की पदा. न्नति के लिए भारत की अर्थव्यवस्था को अपने सामर्थ्यवान कन्धों पर साधे हुये है । तो वहीं दूसरी ओर किसान सामाजिक, आर्थिक, मानसिक व शारीरिक दृष्टिकोण से गिरता चला जा रहा है । कारण 'किसान की आय'

देश का विकास तो अपने धुरी पर सामान्य गति से और तेज गतिमान है, परन्तु देश के विकास में सहायक किसान के विकास में स्थिरता सी आ गयी है । जोत का आकार छोटा होने के कारण किसान योजनाओं का लाभ उठानें में असमर्थ रहता है । जिससे किसान धीरे–धीरे पिछड़ता चला जा रहा है।

एक नजर भारतीय किसान के जोत पर –

कृषि प्रसार विभाग, जनता कॉलेज बकेवर, इटावा।

किसान की पिछडती स्थिति को देखकर भारत के प्रधान मंत्री ने किसान की आय दुगनी करने पर जोर देते हुये कहा कि मैं 2022 तक किसानों की आय को दोगुना कर दूँगा ।

किसान की आय दोगुनी करने में भारत सरकार की रणनीति –

1. प्रत्येक खेत की मृदा गुणवत्ता के अनुसार उन्नत बीज एवं पोषक तत्वों का प्राविधान।
2. प्रतिबूंद अधिक फसल के सिद्धांत पर प्राप्य संसाधनों के साथ सिंचाई पर विशेष बल।
3. कटाई के उपरान्त फसल हानि को रोकने के लिए गोदामों व कोल्ड श्रृंखला में बड़ा नि. वेश।
4. खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से मूल्य संबर्धन को प्रोत्साहन।
5. जोखिम को कम करने के लिये कम कीमत पर फसल बीमा योजना की शुरुआत।
6. राष्ट्रीय कृषि बाजार का क्रियान्वयन एवं सभी केन्द्रों पर विकृतियों को दूर करते हुये ई प्लेटफार्म की शुरुआत।
7. डेयरी–पशुपालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, मछलीपालन, बागवानी जैसे सहायक गतिविधियों में बढ़ावा देना ।

भारतीय किसान सरकार की सहायता के साथ–साथ स्वयं से भी अपनी आय को दुगना करने का सामर्थ्य रखता है।

किसानों की आय दोगुनी करने के साधारण तरीके :–

- **मधुमक्खी पालन :–** मधुमक्खी पालन एक ऐसी कृषि उद्योग है । जिसमें कम समय व न्यूनतम लागत में दोगुना लाभ प्राप्त किया जा सकता है। देश में लगभग 86.2 प्रतिशत कृषक छोटे किसान की श्रेणी में आते है। जिनमें अधिकांशतरू भूमिहीन होते है। जानकारी सरल होने के कारण अशिक्षित व्यक्ति भी इस व्यवसाय को कुशलता से कर सकते है । पाँच से दस मधुमक्खी के बॉक्स से कम लागत से उद्योग आरम्भ कर शुरू के तीन वर्षों के अन्दर किसान 50 से 100 बाक्सों का मालिक बन सकता है ।

मधु के अलावा अन्य उत्पादित पदार्थ :–

मोम – मोम का मूल्य मधु से काफी अधिक है।

उपयोग – मोमवत्ती उद्योगों में, औषधि में, पॉलिश में एवं सौन्दर्य प्रशाधन में।

मधुमक्खी पालन उद्योग में किसान मधु व मोम बेचकर लाखों रु० प्रतिवर्ष आमदनी प्राप्त कर सकता है।

नोट :– 80 से 90 हजार मधुमक्खी से एक छत्ते से 16 से 18 किग्रा० मधु प्राप्त होता है।

मिश्रित कृषि :– (फसल उत्पादन+पशुपालन)

मिश्रित कृषि किसान की आय दोगुनी करने में अत्यधिक सहायता करती है। किसान फसल का उत्पादन कर फसल के अवशेष गेहूं का भूसा, धान का पुआल, बाजरे की करबी आदि को पशु भोजन के रूप में प्रयोग कर सकता है। साथ ही पशुओं से दूध, मांस, ऊन, अंडा आदि प्रमुख उत्पाद को बेचकर अपनी आय में अतुलनीय बुद्धि कर सकता है। साथ ही उपउ. त्पाद जैसे गोबर, मूत्र आदि की खाद बनाकर उपजाऊ मृदा में मिलाकर मृदा उर्वरता को बढाने के साथ–साथ पारिस्थितकीय संतुलन भी बना सकता है।

- **फल एवं शाकों में मूल्य संवर्धन कर आय को दोगुना करना :–** भारत शाकों व फलों का मूल्य संवर्धन करने में काफी पीछे है, जहाँ भारत में शाकों व फलों का मूल्य संवर्धन 7 प्रतिशत होता है, वहीं दुनियां के अन्य देश जैसे चीन में 20 प्रतिशत से अधिक व यू०के० में 88 प्रतिशत से अधिक मूल्य संवर्धन किया जाता है। मूल्य संवर्धन से किसान की आय सीधे–सीधे दोगुनी होती है। 'तेज आंधी आने पर आम के वृक्षों पर लगे कच्चे आम (अमियां) जमीन पर गिर कर चटक जाते है, जिनकी बाजार में कीमत 100 रु० प्रति 10 किग्रा०, परन्तु उस कच्चे आम को छीलकर उसके गूदे को सूखाकर बाजार में बेचने पर कीमत 200 से 400 रु० प्रति किग्रा० मिलती है। जिससे किसानों को दोगुना मुनाफा होता है।

नोट :– 10 कि०ग्रा० कच्चे आम से लगभग 1 से 1.5 किग्रा० गूदा (Pulp) प्राप्त होता है।

आदि उत्पाद तैयार कर किसान अपनी आय में दोगुनी वृद्धि कर सकता है।

हरित ग्रह तकनीकी का उपयोग कर किसान की आय में होती है वृद्धि :-

किसान थोड़ी सी जानकारी प्राप्त कर प्रतिकूल कृषि जलवायु वाली स्थिति में आवश्यक फसलें पैदा कर सकता है । मटर, सेम, ग्वार, लोविया, बैगन, मिर्च, आदि के बीजों को किसान अपने हरित ग्रह में (ग्रीन हाउस) में उगाकर दोगुना मुनाफा कमा सकते है ।

उदाहरण :- लद्याख क्षेत्र में मौसम की प्रतिकूलता के बावजूद सब्जियाँ पैदा की जाती है । तथा भारत में भी अलंकारी पौधों के उत्पादन से विदेशी मुद्रा कमाने के साधन बन गये है ।

जल कृषि (झींगा उत्पादन) :-

आजादी से लेकर आज तक देश भोजन की समस्या से जूझ रहा है। देश की लगभग 26 प्रतिशत (लगभग 32 करोड) जनसंख्या ऐसी है जिसे दो वक्त का भोजन नहीं मिलता है । इस समस्या को सुलझाने के लिए एक तरीका यह है कि अधिक से अधिक झीगें व मछलियों का पालन हो ।

मीठ पानी के झीगें की देश में करीबन 34 प्रजातियों पायी जाती है । झीगा क्रस्टेशियन आर्डर एवं समुदाय के अंतर्गत डेकापोडा आर्डर एवं पैलीमोनोडी परिवार में आते है भारत में इनका उत्पादन ऐशिया के उत्पादन का ¼ भाग या 8000 टन होता है । भारत में मेक्रोबेकियन रोजनवर्गी (महाझींगा) का पालन होता है । झींगा पालन छोटे तालावों में होत है । झींगा पालन भोजन की समस्या के निदान के साथ-साथ किसान की आय में भी दोगुनी वृद्धि करता है ।

खड़ी खेती (Vertical farming)

खड़ी खेती भारत में एक नई है । खड़ी खेती में कम भूमि में अधिक उत्पादन का सफल प्रयोग किया जा रहा है । खड़ी खेती इमारतों की छत पर भी की जा सकती

है । इस खेती में एल०ई०डी० बल्ब द्वारा कृत्रिम प्रकाश बनाया जाता है । इस प्रकार की फसल रोग रहित होती है । साथ ही इसमें किसी भी रासायानिक उर्वरक का उपयोग नहीं किया जाता है । (Vertical farming) अपनाकर किसान अपनी आय में वृद्धि कर सकता है ।

- एक अनुमान के अनुसार 2050 तक 80 प्रतिशत आबादी शहर में रहने लगेगी । अतः खड़ी खेती भविष्य में पुर्णतः सफल सिद्ध होगी ।
- खड़ी खेती में पारम्परिक खेती की तुलना में दस गुना कम पानी व

क्र. सं.	ताजा उत्पाद	कीमत रु० प्रति कि०ग.ा०	संसाधित उत्पाद	कीमत रु०प्रति कि०ग्रा०
1.	आलू	10	आलू चिप्स	100 से 200
2.	टमाटर	5 से 10	चटनी	60 से 100
3.	आँवला	15 से 25	कैंडी	100 से 200
4.	आम	20 से 60	जैम	150

लगभग 100 गुना कम भू-भाग की आवश्यकता होती है ।

किसान की आय दोगुना होने से लाभ :-

1. अगर किसान को दोगुना मुनाफा होगा तो वह अपने उपभोग के मतलब का सामान खरीदेगा । जैसे :- चारा काटने की मशीन, सिलाई मशीन आदि । जिससे नजदीकी उद्योगों में वृद्धि होगी । जिससे रोजगार के नये अवसर प्राप्त होंगे ।
2. बेरोजगारी किसान आत्म हत्या जैसे भीषण समस्या का भी निदान होगा ।

निष्कर्ष :-

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय) की रिपोर्ट के मुताबित लगभग 40 प्रतिशत किसान खेती करना छोड़ना चाहते है। कारण है कि उनकी आय में वृद्धि का न होना। कृषि भारत की 'रीड' है। इसलिए सरकार को किसान की आय बढाने पर जोर देना होगा। कृषक की आय में वृद्धि होने से नये रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे। जिससे वेरोजगारी भी दूर होगी।

अरहर की उत्पादन तकनीक

श्री अवनीश कुमार सिंह (सस्य विज्ञान)

अरहर लेग्यूमिनेसी परिवार का एक बहुवर्षीय पौधा है। जिसे मुख्य रूप से एक वर्षीय फसल के रूप में उगाया जाता है। अरहर दलहनी फसल होने के कारण भूमि की उर्वरता को बढ़ाता है साथ ही मृदा की कठोर परत को तोड़ कर संरध्रता में वृद्धि करती है। मृदा कटाव अवरोधी फसल के रूप में तथा आच्छादनकारी एवं रक्षक पट्टी फसल के रूप में इसका प्रमुख स्थान है। इसकी लकड़ी जलाने, टोकरी बनाने, छप्पर छाने, कृत्रिम मल्च के रूप में प्रयोग होती है। इसकी भूसी व चूनी पशुओं का प्रमुख राशन है। इसमें प्रोटीन की अधिकता पाई जाती है, जिसमें मुख्य रूप से लाइसिन, ताइरोसीन, सिस्टीन, आर्जीनिन इत्यादि अमीनोअम्ल भी पाये जाते है। अरहर में आयरन तथा आयोडीन की भी अधिकता पाई जाती है।

भूमि – इसकी खेती बलुई मिटटी से लेकर दोमट मिटटी में की जा सकती है। इसकी खेती के लिये जल निकास की उचित व्यवस्था आवश्यक है । अरहर की खेती कंकरीली, पथरीली भूमियों में भी की जा सकती है जिसका पी.एच.मान 7.0-8.5 का हो।

खेत की तैयारी – देशी हल या ट्रेक्टर से दो-तीन बार खेत की गहरी जुताई व पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिये। बुवाई के समय खेत में उचित नमी होना आवश्यक है। साथ ही जल निकासी की समुचित व्यवस्था कर लेनी चाहिये।

उन्नत किस्में – अपने क्षेत्र के लिए संस्तुत उन्नत एवं रोग रोधी किस्मों का ही चुनाव करना चाहिये। बहुफसली खेती में शीघ्र पकने वाली किस्मों का चुनाव करना चाहिए। मध्य प्रदेश में अरहर की निम्न प्रजातियाँ अच्छा उत्पादन देती हैं।

किस्म	उपज (कि०/हे०)	फसल अवधि (दिन)	विशेषतायें
आई.सी.पी.एल.-87	10-12	130-140	छोटा पौधा, बीज मध्यम बड़ा, द्विफसली खेती के लिए उपयुक्त, बीज गहरालाल
जे.के.एम.-7	18-20	170-180	लम्बा पौधा, मध्यम बड़ा लाल-भूरा बीज, उकठा रोधी, फली बेधक के प्रति निरोधी
जे.के.एम.-189	20-22	170-175	दाना लाल रंग का, सिंचित व असिंचित क्षेत्रों में अच्छा उत्पादन, पकते समय
आई.सी.पी.एल.-87119 (आशा)	16-18	160-170	मध्यम आकार का लाल सूखे की अवस्था के प्रति सहनशील दाना, उकठा तथा बांझपन रोग रोधी, लम्बा पौधा
जे.ए.-4	18-20	180-200	छोटा तथा भूरा बीज, लम्बा पौधा, फली छिटकने के प्रति निरोधी तथा रोगों के प्रति सहनशील
एम.ए.-3 (मालविय विकल्प)	22-23	178-262	लम्बा, भूरा तथा अण्डाकार बीज, उकठा रोधी
पूसा-991	16-20	140-145	उकठा, फाइटोप्थोरा ब्लाईट तथा बांझपन मोजैक रोग के प्रति सहनशील
पूसा-992	17-18	140-160	उकठा रोग के प्रति सहनशील
आई.सी.पी.एल. 88039	18-20	135-140	शीघ्र पकने वाली,

बुवाई का समय एवं दूरी :- अरहर की बोनी वर्षा प्रारम्भ होने के साथ ही कर देनी चाहिए । सामान्यतः जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह तक का

टी.जे.टी.- 501	18-20	160-170	उकठा, फाइटोप्थोरा ब्लाईट के प्रति सहनशील
राजेशवरी-PT0012	18-20	135-150	फ्यूसेरियम विल्ट तथा बांझपन मोगैक के प्रति मध्यम अवरोधी, फली बेधक तथा फल मक्खी के प्रति सहनशील
टी.ए.टी. – 9629	19-20	154-189	कम फैलाव तथा फली बेधक व फल मक्खी के प्रति सहनशील
बी.डी.एन. 2004-3	15-23	150-160	spreading टाइप, उकठा, बांझपन मोगैक रोग के प्रति सहनशील सूखा के प्रति सहनशील
पूसा-2002 (2007)	16-17	110-150	जल्दी पकने वाली
आई.सी. 550413 (2007)	18-19	178-180	फ्यूसेरियम उकठा व SMV के प्रतिरोधी तथा फली छेदक के प्रति सहनशील
राजीव लोचन (2011)	18-19	178-180	उकठा तथा SMV के प्रति प्रतिरोधी
पूसा-16 (2016)	20-22	125-130	बहुरोग रोधी, अतिशीघ्र पकने वाली सुखा सहनशील

समय उपयुक्त रहता है। शीघ्र पकने वाली जातियों के लिए 60 से.मी. व मध्यम तथा देर से पकने वाली जातियों के लिए 70-90 से.मी. रखनी चाहिए। पौधे से पौधे की दूरी कम अवधि की जातियों के लिए 15-20 से.मी. एवं मध्यम तथा देर से पकने वाली जातियों के लिए 25-30 से.मी. रखें।

बुवाई की विधि – बुवाई सीड ड्रिल अथवा हल के पीछे करना उचित रहता है।

अरहर की बुवाई की सर्वोतम विधि मेड़ों पर होती है। इससे रोगों से भी सुरक्षा होती है और अधिक उत्पादन प्राप्त होता है । बुवाई 4-6 से.मी. की गहराई पर करनी चाहिए।

नर्सरी विधि द्वारा अरहर की बुवाई – इस विधि में ग्रीष्मकाल में अरहर की नर्सरी छिद्रयुक्त पालीथीन की थैलियों में तैयार की जाती है था वर्षा प्रारम्भ होने पर खरीफ अरहर के रूप में खेतों में (1.50 मी०X0.90 मी०) रोपाई कर दी जाती है।

बीज की मात्रा व बीजोपचार – जल्दी पकने वाली जातियों का 20-25 कि०ग्रा० एवं मध्यम अवधि की किस्मों का 15-20 कि०ग्रा० बीज प्रति हे० की दर से बोना चाहिए । बोने से पूर्व बीजों को फफूंदनाशक दवा से 2 ग्राम थायरम + 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम या 2 ग्राम वीटावैक्स और 5 ग्राम ट्राइकोडरमा प्रति कि०ग्रा० बीज के हिसाब से उपचारित करना चाहिए । इसके बाद राइजोबियम 10 ग्राम प्रति किलो बीज की दर उपचारित कर, धूप से बचा कर बुवाई कर देनी चाहिए।

उर्वरक प्रबंधन – बुवाई के समय 20-25 कि०ग्रा० नत्रजन, 40-50 कि०ग्रा० स्फुर, 20-25 कि०ग्रा० पोटाश तथा 20 कि०ग्रा० गंधक प्रति हेक्टेयर कतारों में बीज के नीचे देना चाहिए । प्रत्येक तीन वर्ष में एक बार 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर जिंक सल्फेट को खेत की तैयारी के समय अंतिम बखरनी के पूर्व छिडक कर देने से पैदावार बढती है।

निदाई-गुड़ाई – अरहर के प्रारम्भिक जीवन काल में खेत का खरपतवार रहित होना अत्यंत आवश्यक है । इसलिए बोने के 40-50 दिन तक खेत में खरपतवारों की रोकथाम अतिआवश्यक होती है। अंकुरण से पूर्व पेंडीमिथलीन की 3.3 लीटर मात्रा 800 लीटर पानी में घोल कर छिडक देना चाहिए। खरपतवारों के नियंत्रण के लिए 20-25 दिन में पहली निंदाई तथा फूल आने के पूर्व दूसरी निंदाई करनी चाहिए।

सिंचाई – जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो वहाँ एक हल्की सिंचाई फूल आने पर व दूसरी फलियाँ बनने की अवस्था पर करनी चाहिए।

पौध संरक्षण –

रोग

1. **उकठा रोग -** इस बीमारी से बचने के लिए रोग रोधी जातियाँ लगानी चाहिए। उन्नत किस्मों को बीज उपचार करके ही बोना चाहिए। ज्वार के साथ अंतरवर्त्तीय फसल लेने से उकठा का प्रकोप कम होता है
2. **फाइटोप थोरा झुलसा रोग –** रोग रोधी किस्मों को लगाना चाहिए। बुवाई से पूर्व बीजों को 3 ग्राम मेटेलाक्सील नामक फफूंद नाशक दवा प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें।
3. **बांझपन रोग –** रोग रोधी किस्मों को बोना चाहिए। रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट क्र देना चाहिए। मकड़ी का नियन्त्रण करना चाहिए।

कीट नियंत्रण –

1. **फली मक्खी –** डायमेथोएट 30 ई.सी. या प्रोफेनोकांस 50 ई.सी. के 1000 मि.ली. मात्रा 500 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करना चाहिए।
2. **फली छेदक इल्ली –** इंडोक्साकार्ब 14.5 ई.सी. 500 एम.एल. या क्वानालफास 25 ई.सी. 1000 एम.एल. या एसीफेट 75 डब्लू.पी. 500 ग्राम को 500 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर छिडकाव करें।
3. **फली का मत्कुण –** डायमेथोएट 30 ई.सी. या प्रोफेनोफाँस 50 ई.सी. के 1000 मि.ली. मात्रा 500 लीटर पानी में घोल कर छिडकाव करें।
4. **ब्रिस्टल बीटल –** सुबह-शाम भृंग को पकड़कर नष्ट कर देने से प्रभावी नियंत्रण हो जाता है।

कटाई एवं गहाई – जब पौधे की पत्तियाँ गिरने लगे एवं फलियाँ सूखने पर भूरे रंग की हो जाँए तब फसल काट लेनी चाहिये। 8-10 दिन खलिहान में सुखाने के बाद गहाई करें व उचित नमी होने तक सुखाकर भण्डारण करें।

किसानों की सफलता का मंत्र – कम्बाइन हार्वेस्टर यंत्र

श्री अवनीश कुमार सिंह (सस्य विज्ञान)

हमारे देश की जनसंख्या लगभग 130 करोड़ के आंकड़े को पार करने के कगार पर है । इस बढती आबादी के भरण-पोषण के साथ-साथ इनकी खाद्य सुरक्षा की जिम्मेदारी भारतीय कृषकों के कंडों पर ही है । इसीलिए हमारी कृषि में नित नवीन अनुसंधान कर कृषि को एक नई दिशा की ओर अग्रसर किया जा रहा है । कृषि में यांत्रिकीकरण का होना इसी का एक भाग है । भारत में कृषि यांत्रिकीकरण होने से कई प्रकार की उन्नत, आधुनिक, छोटे व बड़े कृषि यंत्रों का विकास किया गया एवं इनको लोकप्रिय बनाकर देश के अधिकांश हिस्सों में प्रचलित किया गया । इन आधुनिक कृषि यंत्रों से खेती के प्रत्येक कार्य को बड़ी सुगमता पूर्वक व कम श्रम के साथ आसानी से किया जाता है । कम्बाइन हार्वेस्टर मशीन की सहायता से फसलों की कटाई व् मड़ाई बड़ी आसानी से की जाती है । सम्पूर्ण भारत में इस मशीन का प्रयोग बहुतायत में किया जा रहा है । मीरजापुर जिले के किसान भाइयों में भी यह मशीन बहुत प्रचलित हो रही है ।

कम्बाइन हार्वेस्टर :

कई यूनिटों का मिलकर कार्य करना कम्बाइन कहलाता है और हार्वेस्ट खड़ी फसल को काटने के नाम से लिए गया है । अर्थात यह वह मशीन है जिसके द्वारा खड़ी फसल की कटाई करके भूसे तथा अनाज को अलग-अलग किया जाता है । इस कम्बाइन हार्वेस्टर के द्वारा मुख्य गेहूँ, धान, जौ आदि फसलों की कटाई आसानी से व कम समय में की जा सकती है । कंबाइन हार्वेस्टर एक बड़ी मशीन है ये एक ही समय में फसल की कटाई, थ्रैसिंग एवं अनाज की सफाई भी करती है । इसकी मुख्य इकाइयां हैं – फसल एकत्रित करने वाली इकाई, फसल काटने वाली इकाई, कटी फसल थ्रैसिंग इकाई तक पहुचाने वाली इकाई, थ्रैसिंग इकाई, पृथक्करण इकाई, सफाई और शक्ति संचरण इकाई है ।

कम्बाइन हार्वेस्टर के प्रकार

कम्बाइन हार्वेस्टर (पारंपरिक)

इस प्रकार की कम्बाइन हार्वेस्टर में वायवीय (न्यूमेटिक) टायरों का उपयोग किया जाता है। यह खेत में गिरी हुई फसल को भी काट सकता है। इसकी कटाई क्षमता लगभग 1-2 एकड़ प्रति घंटा होती है।

ट्रैक वाली कम्वाइन हार्वेस्टर

यह परंपरागत कम्बाइन हार्वेस्टर के समान ही होती है, लेकिन इसमें वायवीय (न्यून्मेटिक) टायरों के स्थान पर ट्रैक का उपयोग होता है। ट्रैक के उपयोग के कारण यह मशीन गीले खेत में भी अच्छी तरह से काम करती है। यह खेत में गिरी हुई फसल को भी काट सकता है। इसकी कटाई क्षमता भी लगभग 1-2 एकड़ प्रति घंटा है।

हाफ फीड कम्बाइन हार्वेस्टर (टाइप-1)

इस प्रकार की कम्बाइन हार्वेस्टर मशीन में केवल पौधों की बालिया मशीन के अन्दर जाती हैं और यहीं पर उसकी थ्रैसिंग, पृथक्करण एवं सफाई होती है। जबकि कतरबार शेष फसल को काटता है, और उसको मशीन दूसरी तरफ गिरा देती है। इसकी कटाई क्षमता लगभग 0.5 एकड़ प्रति घंटा होती है।

हाफ फीड कम्बाइन हार्वेस्टर (टाइप-2)

इस हार्वेस्टर मशीन में फसल कटकर मशीन के अन्दर जाती हैं और मशीन में बालियों को पौधों से पृथक कर लिया जाता है, जहां बालियों की थ्रैसिंग, पृथक्करण एवं सफाई होती है। पौध का शेष हिस्सा मशीन द्वारा छोटे-छोटे बंडलों में बांधकर मशीन के पीछे फैंक दिया जाता है। यह खेत में गिरी फसल को भी काट सकता है। इसकी कटाई क्षमता लगभग 1 एकड़ प्रति घंटा है। हमारे किसान भाई इस मशीन से धान की फसल की कटाई समय पर कर सकते हैं, और कटाई के समय श्रमिकों की कमी की समस्या एवं देर से कटाई होने वाले नुकसान से भी बच सकते हैं। इस तरह वह अपने फसल से होने वाले लाभ को अधिक कर सकते हैं।

प्रचालन के आधार पर कम्बाइन हार्वेस्टर के प्रकार

प्रचालन के आधार पर कम्बाइन हार्वेस्टर मुख्यतः दो प्रकार की होतीं है :-

1. पुल टाइप (खींच कर चलने वाली)
2. सैल्फ प्रोपैल्ड टाइप (स्वतः चलने वाली)

पुल टाइप (खिंच कर चलने वाली)

इस प्रकार की कम्बाइन हार्वेस्टर ट्रैक्टर द्वारा खिंच कर चलाई जाती है। इसको चलाने के लिए ट्रैक्टर के पी.टी.ओ. शाफ्ट के द्वारा शक्ति (पॉवर) प्रदान की जाती है। इसके ब्लेड की चौड़ाई 4-8 फुट तक होती है।

सैल्फ प्रोपैल्ड टाइप (स्वतः चलने वाली)

इस प्रकार की कम्बाइन हार्वेस्टर को चलाने के लिए किसी ट्रैक्टर की आवश्यकता नहीं पडती बल्कि कम्बाइन मशीन में ही एक शक्तिशाली इंजन लगा दिया जाता है, जो 45 से 105 हॉर्स शक्ति का होता है जो कम्बाइन हार्वेस्टर के सभी भागों को कुशलतम तरीके से चलाने में समर्थ होता है। इस हार्वेस्टर मशीन में ट्रैक्टर की तरह ही आगे व पीछे, छोटे व बड़े पहिये भी लगे होते हैं। कम्बाइन हार्वेस्टर के प्रचालन में इन पहियों का बहुत महत्त्व है, ये पहिये इस भारी मशीन के परिवहन में मदद करते हैं। ट्रैक्टर की भांति ही इसे अच्छी प्रकार से चलाने व नियंत्रण करने हेतु एक गियर प्रणाली व गियर बॉक्स एवं मोड़ने के लिए स्टीयरिंग मैकेनिज्म भी दिया होता है। इसमें आमतौर पर खेत में कटाई के दौरान कम्बाइन हार्वेस्टर की न्यूनतम गति 2 कि.मी. तथा अधिकतम गति 6 कि.मी. प्रति घंटा होती है। सड़क पर इसकी गति 6-20 कि.मी. प्रति घंटा तक हो सकती है।

कम्बाइन हार्वेस्टर के मुख्य भाग :

कम्बाइन हार्वेस्टर के मुख्यतः तीन भाग होते हैं :-

1. कटर बार असैम्बली
2. फीडिंग यूनिट
3. थ्रैसिंग यूनिट

कटर बार असैम्बली

यह असैम्बली कई भागों को मिलाकर बनती है । पिक-अप रील द्वारा सामने की फसल को झुकाकर कटर बार से काटने का कार्य किया जाता है । कटर बार का ब्लेड 900 से 1000 स्ट्रोक प्रति मिनट की गति से चलता है । यदि ब्लेड की गति इससे कम होगी तो फसल की कटाई अच्छी प्रकार से नहीं होती है, अतः मशीन को संस्तुत गति पर ही चलाना चाहिए । इसी यूनिट के अन्दर कटी हुई फसल को इकट्ठा करके फीडिंग कनवेयर तक पहुँचाया जाता है और फिर कनवेयर फसल को थ्रैसिंग यूनिट तक पहुँचाती है ।

फीडिंग यूनिट

जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है कि फसल कटिंग बार से कटने के बाद फीडिंग यूनिट को पहुँचती है । यह फीडिंग यूनिट कटी हुई फसल को थ्रैसिंग यूनिट तक ले जाने में मदद करता है । फीडिंग यूनिट चैन की बनी होती है जो लगातार चलायमान रहती है और कटी हुई फसल को निरंतर को थ्रैसिंग यूनिट में भेजने का कार्य करती है ।

थ्रैसिंग

इस यूनिट द्वारा दानों को फसल से या भूसे से अलग किया जाता है । थ्रैसिंग यूनिट में भी कई भाग हिस्सा लेते हैं । कम्बाइन हार्वेस्टर मशीनों के निर्माता के अनुसार थ्रैसिंग यूनिट में लगे पुर्जा का डिजाईन भिन्न-भिन्न होता है ।

कम्बाइन हार्वेस्टर के लाभ

1. मजदूरों की कम आवश्यकता होती है।
2. कम श्रम की आवश्यकता होती है।
3. फसल की कटाई जल्दी करके अगली फसल के लिए खेत को समय पर तैयार किया जा सकता है।
4. फसल से प्राप्त उत्पादन को जल्दी ही बाजार में पहुंचा कर उचित दाम प्राप्त किये जा सकते है।
5. मशीन को किराए पर चला कर अतिरिक्त धन कमाया जा सकता है।

कम्बाइन हार्वेस्टर की सीमाएँ

1. कीमत अधिक होने के कारण हर किसान इसे नहीं खरीद सकता।
2. इसकी कटाई से भूसे आदि की अधिक हानि होती है।
3. मशीन बजन में भारी होने के साथ-साथ आकार में भी काफी बड़ी होने की बजह से छोटे खेतों में नहीं चल सकती।
4. मशीन जब उपयोग में नहीं होती है (ऑफ सीजन) तब इसे सुरक्षित रखने के लिए भुत बड़े शेड की आवश्यकता होती है।
5. इसके द्वारा कटाई का शुल्क अधिक होने के कारण सभी किसान इससे कटाई कराने में सक्षम नहीं है।
6. खराब होने पर इसके मिस्त्री व कलपुर्जे मिलना कठिन हो जाता है।
7. पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रायः पंजाब या हरियाणा से कम्बाइन हार्वेस्टर मशीनों ला कर कटाई का कार्य सम्पन्न किया जाता है।

काम्पेक्ट भूसा बनाने वाली मशीन

कम्बाइन मशीन से गेहूं की कटाई में भूसे का नुक्सान होता है, कटाई के पश्चात खेत खाली करने के लिए प्रायः किसान खेत में मशीन द्वारा गिराए हुए पौधों के डंठल एवं भूसे को जला देते हैं। जिससे कि पर्यावरण दूषित होता है। साथ ही साथ कीमती भूसा जो कि पशुओं के आहार के काम आता है भी जलकर राख हो जाता है।

पौधों के अवशेष जलाने का दुष्परिणाम भूमि की उर्वराशक्ति एवं जैविक क्रियाओं पर भी पड़ता है। इन कमियों को देखते हुए कुछ किसानों के मन में कम्बाइन द्वारा गेहूं की कटाई में वांछित रूचि का अभाव देखा गया है। समय से कटाई हेतु एवं मशीन का उपयोग बढ़ाने हेतु उपरोक्त समस्या का निदान निकालता हुए एक नई और काम्पेक्ट भूसा कटाई कम्बाइन हार्वेस्टर मशीन का विकास किया है। विकसित मशीन का परीक्षण विगत गेहूं कटाई में मौसम में किया गया, जिसका परिणाम भुत ही उत्साहवर्धक एवं सराहनीय रहा है।

इन तरीको से करें खेती के लिए जल संरक्षण

डॉ. आर. पी. सिंह (फसल सुरक्षा)

आज के समय में जल संरक्षण एक प्रमुख समस्या है. देश में विश्व के मीठे जल संसाधनों का महज कुछ फीसद उपलब्ध है. बाकी 60 प्रतिशत जल को खेती के लिए उपयोग किया जाता है. मानसून के सीजन में भी देश में सामान्य वर्षा तो हो ही जाती है. लेकिन इसके पानी को संरक्षित करने के लिए कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं है. देश में ठीक से जल प्रबंधन नहीं होने की वजह से बरसात के पानी की बाढ़ उपजाऊ मिट्टी को अपने साथ बहा ले जाती है. ऐसे में आज के समय में जरूरत है कि खेती में पानी के प्रयोग में बदलाव किया जाए ताकि इसके सहारे पानी की कम बर्बादी हो, और भविष्य की जरूरत के हिसाब से पानी का पर्याप्त भंडार बना रह सकें. इसीलिए हम आपको बता रहे है कि किसान इस बरसाती मौसम में कैसे पानी को संरक्षित कर सकते है.

भूमि की लेजर लेवलिंग

लेजर लेंवलिंग एक इस तरह की तकनीक है जोकि सिंचाई के लिए पानी के संरक्षण में अत्यंत उपयोगी होती है,खेतों में बनी हुई अरियां मिट्टी की जल दक्षता को बढ़ाने में मददगार होती है. इससे पानी की कुल जरूरत में 20 से 25 प्रतिशत तक की बचत हो जाती है, इससे अकुंरण, पौधों के खड़ा रहने की शाक्ति और फसल की पैदावार बढ़ती है.

पीपे में पानी का भंडारण

पीपे में आप वर्षा के जल को जमा कर सकते है और यह काफी उपयोगी होता है. इस प्रकार से संगृहित पानी का इस्तेमाल वर्षा के बाद के मौसम में या सूखा के दौरान किया जा सकता है. लेकिन पीपो को ढककर और मुंह पर जाली लगाकर रखना चाहिए तकि उससे मच्छर न पैदा हो.

ड्रिप सिंचाई तकनीक

ड्रिप सिंचाई तकनीक पर खर्च करने की कोशिश करें. यह सिंचाई की सर्वोत्तम विधि है. इसके सहारे पानी के नियंत्रित इस्तेमाल, घास-फूस, कीट-पतंगों का प्रकोप को कम करने में भारी लाभ होता है

फसलों का आवर्तन

फसलों को अलग-अलग मृदा पोषण और जल के मात्रा की जरूरत होती है. फसलों की किस्म के आवर्तन से आम तौर पर पानी की खपत कम ही होती है. इससे पैदावार काफी सही रहती है.

जैव पदार्थों से भूमि ढकें

नमी को बनाए रखने के लिए मिट्टी को जैव खाद, सूखे चारे, घास, पुआल, छाल आदि से ढक लें.

छोटे-छोटे तालाबों का निर्माण

वर्षा का जल पानी का प्राकृतिक स्त्रोत होता है, सिंचाई के लिए इसका प्रयोग करना चाहिए. आप खेत के निचले हिस्से में छोटे-छोटे तालाब बना सकते है ताकि बरसात का पानी सिंचाई की ओर से आकर इसमें जमा हो सकें.

तुलसी की खेती

डॉ. अजीत कुमार श्रीवास्तव (उद्यान)

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में औष धीय एवं सुगन्धित पौधों का आयुर्वेद चिकित्सा में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । जिसका उल्लेख वेदों में भी विस्तार से किया गया है । औद्योगिकीकरण के युग में नई वैज्ञानिक खोजों से आधुनिक चिकित्सा पद्धति बहुत से रोगों के त्वरित निदान में सहायक तो है लेकिन इनके स्थायी निदान में अक्षम रही है तथा इसके समानांतर दुष्प्रभावों से मानव जाती प्रभावित हुई है । इस कारण जनमानस का ध्यान वर्तमान परिवेश में फिर प्राकृतिक चिकित्सा एवं जड़ी बूटियों द्वारा उपचार पर केन्द्रित हो रहा है जिसके फलस्वरूप प्राकृतिक रूप से पायी जाने वाली जड़ी बूटियों की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मांग में निरंतर वृद्धि हो रही है ।

देश के कृषकों को महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की खेती के लिए प्रेरित करना ही, इनके संरक्षण एवं बहुगुणन का एक मात्र ठोस उपाय है । इससे न केवल मानव जाति का कल्याण होगा, बल्कि हमारे देश के किसानों की आर्थिक स्थित भी सुदृढ़ होगी । औषधीय पौधों की खेती से किसान पारम्परिक फसलों की अपेक्षा कई गुना अधिक लाभ हासिल कर सकते हैं ।

ल का अत्यंत महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है । विभिन्न धार्मिक ग्रंथों में इसके औषधीय गुणों की विस्तृत व्याख्या की गयी है । औषधीय गुणों से युक्त होने के कारण इसके तेल का चिकित्सकीय महत्व भी है । तुलसी का पौधा सदाबहार, 1-3 फीट ऊँचा एवं शाखायुक्त होता है । पुष्प बैगनी रंग एवं छोटे-छोटे पुष्पक्रमों में दिसम्बर से मार्च तक लगते है । बीज चपटे, अण्डाकार पीले रंग के छोटे काले चिन्हों से युक्त होते है ।

औषधीय उपयोग :- इसकी पत्ती, जड़ एवं बीज तीनों का औषधीय महत्व है । इसका तेल विभिन्न प्रकार की औषधियाँ बनाने में प्रयोग किया जाता है । उदाहरणार्थ – कफसीरफ, सर्दी, जुकाम, सर दर्द, सौन्दर्य प्रसाधन, खाँसी की गोलियाँ एवं मुँह से आने वाली दुर्गन्ध इत्यादि में इसका बहुतायत से प्रयोग किया जाता है ।

भूमि एवं जलवायु : दोमट व बलुई दोमट मिटटी जिनका पी.एच.-5.0-8.5 एवं जलधारण क्षमता अच्छी हो, तुलसी की खेती के लिए उपयुक्त होती । इसकी खेती गर्म तथा आर्द्र होनों प्रकार की जलवायु में की जा सकती है । 15-35 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान तुलसी की खेती के लिए उपयुक्त है । तुलसी की बुवाई नवम्बर, दिसम्बर एवं जनवरी माह को छोड़कर पुरे वर्ष की जा सकती है ।

भूमि की तैयारी – मिटटी पलटने वाले हल से 2-3 बार जुताई कर पाटा लगाकर खेत तैयार कर लेते है । गोबर की सड़ी हुई खाद 8-10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से तीसरी जुताई के समय डालकर पुनः पाटा लगाकर खेत को भुरभुरा एवं समतल कर लेते है ।

प्रवर्धन : तुलसी का प्रवर्धन बीज किया जाता है ।

बुवाई: बीज की अप्रैल-मई माह में नर्सरी में बुवाई करना चाहिए । ब्वाई नर्सरी में पहले से तैयार क्यारियों में की जाती है । बीज को 8-10 गुना मिटटी या बालू में मिलाकर क्यारियों में समान रूप से फैला दिया जाता है । एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 600-800 ग्राम बीज पर्याप्त होता है । इसके बाद क्यारियों में बीज को झाड़ू या हाथ की सहायता से फैलाकर हल्की सिंचाई कर दी जाती है ।

रोपण : जब पौधों की ऊंचाई 15-20 से.मी. और पौध की आयु 5-7 सप्ताह हो जाय तो खेत में 45X60 से.मी. की दूरी पर पौधों की रोपाई कर देनीं चाहिए । खेत में रोपाई के तुरंत बाद पानी लगाना आवश्यक होता है ।

खाद एवं उर्वरक : औषधियों पौधो की खेती करने के लिए गोबर खाद की मात्रा लगभग 8-10 टन प्रयोग करना चाहिए । इसके साथ ही साथ 40:30:30 के अनुपात में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश का प्रयोग करना चाहिए । प्रत्येक कटाई के बाद 20 किग्रा. नत्रजन डालने से अधिक उपज प्राप्त होती है ।

सिंचाई : तुलसी की खेती वर्षाऋतु में होती है । इसलिए सिंचाई की आवश्यकता नही होती है । वर्षा न होने पर आवश्यकतानुसार सिंचाई कर सकते है ।

निराई-गुड़ाई – फसल की रोपाई के 30-35 दिन बाद निराई-गुराई करके

खरपतवार निकाल देना चाहिए । इसके बाद आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई करना चाहिए ।

रोग एवं निदान : तुलसी में रोगों एवं कीटों का प्रकोप कम होता है । वर्षाऋतु की फसल होने से कभी-कभी लीफ ब्लाइट रोग द्वारा पत्तियों को नुक्सान पहुँचाता है । इसकी रोकथाम हेतु डाइथेन जेड 78X0.2% घोल का छिड़काव रोगग्रस्त पत्तियों पर 10-15 दिन के अन्तराल पर 2 बार करना चाहिए ।

कटाई: तुलसी की कटाई 60-70 दिन बाद की जाती है । जब अधिकांश पौधो की बल्करी (पुष्पक्रम) हरे से सुनहरी होने लगे तो पौधो को भूमि से 5-6 सेमी. ऊपर से काट कर छायादार स्थान पर सुखा लेना चाहिए ।

उपज : तुलसी के सम्पूर्ण पौधे का आसवन करने पर 0.25% तक तेल की उपज प्राप्त होती है जबकि पुष्पक्रम के आसवन से 0.4% तक तेल प्राप्त होता है । तुलसी के ताजे शाक की उपज 40-50 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है जिसमें से लगभग 200-250 किग्रा. संगध तेल प्राप्त हो जाता है ।

भण्डारण : तुलसी के पत्तों को हवादार नमी रहित स्थान पर जूट के बोरों में भरकर रखना चाहिए ।

दुधारू पशुओं कि देखभाल

डॉ विवेक प्रताप सिंह (पशु विज्ञान)

भारत एक कृषि प्रधान देश है और पशुपालन भारतीय कृषि का अभिन्न अंग है। दूध एवं उससे बने उत्पादों की बढती मांग के चलते पशुपालन के व्यवसाय का तेजी से विस्तार हो रहा है। लेकिन दुधारू पशुओं की उचित देखभाल नहीं होने के कारण पशुपालक को अपने पशुओ से अच्छा उत्पादन नहीं प्राप्त हो रहा हैं। इसके चलते दुग्ध व्यवसाय में लागत तो बढ़ रही है लेकिन उसकी तुलना में मुनाफा कम मिल पा रहा है। पशुओ में रोग, बीमारियां और बांझपन जैसे समस्याएं दुधारू पशुओं को अपनी चपेट में लेकर नुकसान को बढ़ा रही हैं। इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रखकर पशुपालक दुधारू पशुओं की समुचित दे खभाल करें तो लागत को कम कर अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। दुधारू पशुओं की देखभाल परंपरागत तरीके से करने की बजाय आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से की जाये तो कम खर्च के साथ अधिक से अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। इसके लिए मोटे तौर पर विशेष रूप से कुछ बातों का ध्यान रखना जरुरी है। पशुओ से अधिक दुग्ध उत्पादन प्राप्त करने के लिए उनके रहन– सहन, आहार, हरे चारे का प्रबंध, समय पर प्रजनन, टीकाकरण, रोग एवं बीमारी आदि से बचाव की व्यवस्था उचित ढंग से कि जानी चाहिए। इन बातों का उचित ध्यान नहीं रखने पर दुधारू पशुओं की समुचित देखभाल नहीं की जा सकती है।

आहार का महत्व

किसान या डेरी उद्यमी द्वारा पशुपालन का कार्य मुख्यतः दुग्ध उत्पादन के लिए किया जाता है। दुधारू पशुओं के पालन में लगभग 60 से 70 प्रतिशत खर्चा पशुओं की खिलाई–पिलाई पर ही हो जाता है। इसलिए इस खर्चे को कम करने के साथ ही दुधारू पशुओं को खिलाये जा हे चारे दाने से आवश्यक पोषक तत्वों को पूर्ति कैसे की जाये इस बात का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। दुध ाारू पशुओं को संतुलित आदर्श राशन के साथ संतुलित हरा चारा नियमित तौर पर उनकी दुग्ध उत्पादन आवश्यकता के अनुरूप देने की जरुरत है। दुधारू पशुओं से सस्ता और भरपूर दुग्ध उत्पादन प्राप्त करने के लिए सूखे चारे भूसा आदि की जगह अधिक से अधिक हरा चारा खिलाने से आहार पर आने वाली लागत कम होती है। सूखे चारे की तुलना में हरा चारा खिलाने से दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप अधिक मुनाफा प्राप्त होता है।

हरा चारा प्रबंधन

पशुओ को पर्याप्त हरा चारा देकर दाने में कमी की जा सकती है और पर्याप्त दुग्ध लिया जा सकता है इसके लिए पशुपालन से जुड़े किसान ऐसी कार्य योजना बनाएं कि उन्हें वर्षभर भरपूर हरा चारा मिलता रहे। संतुलित हरे

चारे के लिए फलीदार एवं बेफलीदार चारा फसलों को समान रूप से उगायें। रबी में बरसीम के साथ जई, जायद में मल्टी कट चरी के साथ चारे वाला लोबिया एवं खरीफ में ज्वर के साथ ग्वार और लोबिया की चारा फसलों को बराबर मात्रा में उगाकर पूरे वर्षभर पशुओं को संतुलित हरा चारा प्रदान किया जा सकता है। इसके अलावा मकचरी, मक्का, बाजरा, नोपियर घास, सूडान घास, हाथी घास आदि से भी भरपूर पौष्टिक हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। हरे चारे की कमी वाले दिनों में पशुओं को हरे चारों से तैयार 'हे' तथा 'साइलेज' खाने को देने से इसकी पूर्ति की जा सकती है। यदि एक जवान दुधारू गाय भैंस को 30 से 35 किग्रा हरा चारा खाने को दिया जाये तो उसके लिए भूसा की आवश्यकता मात्रा 3 से 4 किग्रा. ही रह जाएगी। इससे भूसा पर आने वाला खर्च घटेगा वहीं भूसा की तुलना में कहीं अधिक पौष्टिक तत्वों से भरपूर हर चारा मिलने से उत्पादन में अधिक वृद्धि प्राप्त होगी।

घर पर बनाएं संतुलित आहार

पशुपालक दुधारू पशुओं के लिए अपने घर पर ही सस्ता और पौष्टिक संतुलित आहार बनाकर पशुओं को खिला सकते हैं। एक आदर्श संतुलित आहार बनाने के लिए रातव जिसमें गेहूँ, जौ, जई, गेहूँ की भूसी आदि 40 प्रतिशत, खल 35 प्रतिशत, दालों और चने के छिलके, चोकर–चूनी 20 प्रतिशत, विटामिन युक्त खनिज लवण मिश्रण 2–3 प्रतिशत और नमक 2 प्रतिशत मात्रा में मिलाकर घर पर ही तैयार किया जा सकता है। इस आहार को दुधारू पशुओं को उनकी दुग्ध उत्पादन की क्षमता के आधार पर खिलाया जाना चाहिए। दुधारू भैंस को 2–5 लीटर तथा गाय को 3 लीटर दुग्ध उत्पादन पर एक किग्रा संतुलित आहार देने की आवश्यकता होती है। दुग्ध उत्पादन कम या ज्यादा होने की दशा में आहार की मात्रा को घटाते बढाते रहना चाहिए। दुधारू पशु को दिन में लगभग दो बार चारा–दाना देना चाहिए और इसके मध्य 8 से 10 घंटे का अंतराल होना आवश्यक है, जिससे भोजन प्रणाली को आराम मिल सके और पशु जुगाली भी कर सकें।

आहार प्रबंधन

दुधारू पशुओं को स्वच्छ, स्वादिष्ट, पाचक तथा पौष्टिक आहार खिलाना चाहिए। पशुओं को जो आहार दिया जाये उसमें विभिन्न प्रकार के चारे–दाने जैसे भूसा, हरा चारा, दाना, खल आदि शामिल करना चाहिए, जिससे पशु को सभी आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा में मिल सकें। आहार ऐसा होने चाहिए जो आसानी से पचने वाला और रुचिकर हो। सूखे दानो, खली, चोकर आदि को खिलाने से कुछ घंटे पूर्व पानी में भिगो देना चाहिए जिससे वे फूलकर स्वादिष्ट बन सकें। सख्त बड़े तने वाले हरे चारे की कुट्टी काटकर पशुओं को खिलाना चाहिए। चारे का प्रकार एकदम नहीं बदलना चाहिए। बदलने के लिए धीरे–धीरे

चारा खिलाने की आदत डाले जिससे उसकी भोजन प्रणाली पर कोई कुप्रभाव न पड़े। दाना सदैव पहले खिलाकर बाद में सूखा या हरा चारा पशुओं को देना चाहिए। दुधारू पशु को कुल शुष्क पदार्थ की आवश्यकता का 2/3 भाग सूखे व हरे चारे से तथा बचा हुआ 1/3 भाग पौष्टिक मिश्रण से मिलना चाहिए। यदि आहार में हरा चारा शामिल हो तो पौष्टिक मिश्रण में 11 से 12 प्रतिशत पाचक प्रोटीन होनी चाहिए। इसके विपरीत यदि हरा चारा नहीं है, तो दाने में इसकी मात्रा कम से कम 18 प्रतिशत होनी चाहिए।

पानी की उपयोगिता

दुधारू पशुओं को दूषित तालाब, पोखर, नालों एवं नदियों का गंदा पानी कदापि नहीं पिलाएं। ऐसे पशुओं को प्रतिदिन चार से पांच बार स्वच्छ एवं ताजा पानी पिलाना चाहिए। यदि यह पानी चूना मिश्रित हो तो अधिक उपयोगी रहता है। इसके लिए पानी पिलाने की टंकी में सफाई के बाद हर बार बिना बुझा चूना डालते रहना चाहिए। इससे पशुओं का पानी हल्का एवं स्वच्छ होकर कैल्शियम युक्त हो जाता है, जिससे पशु के शरीर में कुछ हद तक कैल्सियम तत्व की पूर्ति होती रहती है। पानी की कमी होने की दशा में दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन प्रभावित हो जाता है।

व्यायाम पर दें ध्यान

यदि दुधारू पशु नियमित चारागाह में पशु नहीं जा पा रहा है, तो पशुशाला के पास ही खुले स्थान पर घुमने का प्रबंध रखें। दुधारू पशुओं के शरीर पर नियमित तौर से हर रोज खुरैश जरुर करना चाहिए इससे पशु के शरीर में स्फूर्ति आने के साथ खून का बेहतर संचार होता है। दाद, खुजली आदि रोग नहीं होते और त्वचा व बाल चमकदार बने रहते हैं। गर्मियों के दिनों तथा शरीर पर गंदगी होने की दशा में दुधारू पशुओं को नियमित तौर पर नहलाते रहें।

पशुशाला प्रबंधन

दुधारू पशुओं का सामान्य प्रबंधन अच्छा नहीं हैं तो पशुओं में रोग लगने की संभावना बनी रहती है। इसलिए उनके बेहतर आवास एवं रोगों से बचाव हेतु समुचित व्यवस्था करना नितांत जरूरी हो जाता है। दुधारू पशुओं का आवास बनाते समय यह ध्यान रखें कि उसमें आँधी, वर्षा, सर्दी, गर्मी आदि की सुरक्षा का पूर्ण प्रबंध हो। बाड़े में पशुओं के आराम से उठने–बैठने तथा खिलाई–पिलाई की समुचित व्यवस्था होने चाहिए। दुधारू पशुओं की पशुशाला की नियमित सफाई करना आवश्यक है। इसके लिए समय–समय पर पशुशाला में चूने के प्रयोग के अलावा फिनायल आदि का घोल छिडकते रहना चाहिए। दुधारू पशुओं के निचे का स्थान हमेशा साफ और सूखा रखना चाहिए। जिससे दुधारू पशुओं में तेजी

से पैदा हो रहे थनैला जैसे घातक रोगों से बचाव किया जा सके। दुधारू गाय भैंस को दूध निकालने के बाद आधा घंटे तक फर्श पर बैठने न देकर भी थनैला रोग से बचाव किया जा सकता है। थनैला रोग से बचाव हेतु दूध निकालने के बाद पोटेशियम परमेंगनेट मिश्रित पानी के घोल में चारो थनों को डुबाना चाहिए। इससे थनैला रोग के बैक्टीरिया को पनपने का मौका नहीं मिल पाता है।

रोग एवं बीमारियों से बचाव

दुधारू पशुओं में अंतः एवं बाह्याः परजीवी बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। इनसे होने वाले नुकसान में दुग्ध उत्पादन में भारी गिरावट और पशुओं के शरीर में खून की कमी, बांझपन जैसे समस्या, किलनी बुखार, त्वचा का खराब हो जाना, लगातार दस्त और डायरिया का होना जैसे प्रमुख घातक प्रभाव देखने को मिलते हैं। यह पशुओं के शरीर में कई प्रकार की बीमारी पैदा करने के कारण भी बन जाते हैं। इसलिये प्रत्येक चार माह के अंतरालों पर कृमिनाशक दवा खिलाकर तथा बाह्याः परजीवी की दवा शरीर पर लगाकर निदान करना परम आवश्यक हो जाता है। दुधारू पशुओं को रोगों के बचाव के लिए समय–समय पर रोगरोधी टीकाकरण कराते रहने से इन रोगों पर पूरी तरह काबू पाया जा सकता है। इसके लिए गलघोटू का टीका बरसात का मौसम शुरू होने से एक माह पूर्व लगवा लेना चाहिए। खुरपका–मुंहपका का टीका प्रत्येक छह माह के अंतराल पर फरवरी–मार्च तथा अगस्त–सितम्बर माह में लगवाते रहें। पशुओं के टीकाकरण हमेशा सुबह–शाम ठण्डे मौसम में कराने का प्रयास करना चाहिए। टीकाकरण कराने के बाद पशु को स्वच्छ ताजा पानी से दिन में दो से तीन बार नहलाकर पेड़ों की छांव अथवा ठण्डे छांवयुक्त स्थान पर बांधना चाहिए। इससे टीका की गर्म वैक्सीन का असर कम हो जाता है। दुधारू पशुओं को टीकाकरण कराने से कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ता है।

स्वास्थ्य परीक्षण एवं गर्भ जांच

दुधारू पशुओं का समय–समय पर स्वास्थ्य परीक्षण कराते रहने से बड़ी और गंभीर घातक बीमारी से बचा जा सकता है। व्याने के बाद यदि दुधारू गाय–भैंस तीन माह तक गर्मी पर नहीं आती है या फिर बार–बार गर्मी पर आने के बाद भी गर्भ नहीं ठहरता है तो उसके गर्भाशय की जांच करा कोई कमी होने की दशा में बांझपन चिकित्सा कराने चाहिए वरना व्यांत की अवधि बढने पर आर्थिक नुकसान उठाना पड़ सकता है। गाय–भैंस के गर्मी के लक्षण प्रकट करने के बाद उसे तत्काल गर्भित न कराकर गर्मी में आने के 12 से 24 घंटे बीच में गर्भित कराना

चाहिए। ऐसा करने पर गर्भ ठहरने का प्रतिशत काफी बढ़ जाता है। इस प्रकार से पशुपालक दुधारू पशुओं की देखभाल रखें तो नुकसान को कम कर अधिक लाभ कमा सकते हैं।

पशुओं में थनैला रोग एवं उपचार

डॉ विवेक प्रताप सिंह (पशु विज्ञान)

थनैला रोग पालतू दुधारू पशुओ का एक बहुत ही भयानक रोग है जिसके कारण डेरी व्यवसायियो और पशुपालको को आर्थिक हानि होती है। यह अयन (दुग्ध ग्रंथि) के सुजन की बीमारी अनेक प्रकार की जीवाणुओ द्वारा होती है। इस रोग के कारण पशु के दुग्ध उत्पादन क्षमता में कमी के साथ साथ दुग्ध वसा की मात्रा में भी कमी आ जाती है। जन स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इस रोग का अत्याधिक महत्व है क्योकि थनैला रोग से पीड़ित पशु के दूध के उपयोग से उदर और आन्त्रशोध जैसी बीमारियों के साथ साथ क्षयरोग जैसी भयानक जानलेवा बीमारी भी मनुष्यों में हो सकती है।

कारणः संक्रामक थनैला रोग अनेको जीवाणुओ के कारण होता है जैसे कि स्टेप्टोकोकस, स्टेफाइलोकोकस, एरोबेक्टर, एरोजीनस, क्लेबसिएला प्रजाति, कोरिनो बैक्टीरियम, पयोजीनस, बेसिलस, ट्यूबरक्लोसिस आदि। इस रोग में बैक्टीरिया थन की नली के द्वारा अथवा सीधे रक्त से अयन में प्रवेश करते है । अनेक कारक खुद तो रोग उत्पन्न नही करते परन्तु जीवाणुओ को आमंत्रित करने तथा रोग के पनपने में व फैलने में मदद करते है । इस प्रकार के कुछ महत्वपूर्ण कारक निम्नलिखित है– पशु को अधिक दुग्ध उत्पादन क्षमता, अयन की बनावट बड़े एवं ढीले अयन, थन अथवा अयन पर किसी भी प्रकार का घाव अथवा चोट, गौसाला में गंदगी तथा कुप्रबन्ध, दूध दुहने में अनियमितता एवं पूरा दूध नही दुहना, गंदे बर्तन, दूध दुहने की मशीन की अनुपयुक्त सफाई, गंदे व अनुभवहीन दूध दुहने वाले ग्वाले, ठंडा व गिला फर्श एवं पशु झुण्ड में रोगवाहक पशु की उपस्थिति आदि।

यह रोग पशु के जनने के तुरंत बाद अथवा पशु के दूध देने के अवधि में कभी भी हो सकता है। दूध न देने की अवधि में भी इस रोग का प्रकोप हो सकता है। यह स्थिति अधिक घातक होती है क्योकि दूध न देने वाले पशु पर प्रायः किसी की दृष्टि नही पड़ती।

रोग के लक्षणः

लक्षणों के अनुसार इस रोग की तीन अवस्थाये होती है–

तीव्र थनैलाः इस अवस्था में पशु अत्यधिक बेचौनी महसूस करता है, अयन एकाएक सूजकर कड़ा गर्म और लाल पड जाता है तथा दबाने से पशु को अत्यंत दर्द होता है । दूध का रंग सामान्य सफेद के स्थान पर पहले पीला या मैला भूरा हो जाता है और

बाद में रक्त के कारण गुलाबी अथवा गहरा लाल हो जाता है। इसके साथ ही पशु को कभी कभी ज्वर आ जाता है। वह कम खता है तथा दूध भी कम हो जाता है । कभी कभी अयन एकाएक ठंडा होने लगता है, नीला पड जाता है तथा उसमे सड़न क्रिया प्रारम्भ हो जाती है और दुग्ध धारण ग्रंथि पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है।

कुछ तीव्र थनैलाः इस अवस्था के लक्षण तीव्र रोग के तरह होते है, परन्तु ये ध ीमी गति से बढ़ते है। प्रारंभ में दूध में फुटकी पड़ती हैं जिनके कारण थन की दूध की नली आंशिक रूप अतवा पूरी तरह बंद हो जाती है। इस स्थिति के कारण दूध थन से ठीक से नही निकलता हैं।

दीर्घकालिक थनैलाः इस अवस्था में रोग प्रभावित पाशु में छीछड़े आना धीरे धीरे होता है तथा दूध पतला पीलापन लिए हुए और कभी कभी पानी जैसा आता है। अयन के दुग्ध क्षरण ऊतक पूरी तरह नष्ट हो जाते हैं। आकर बढ़ने के साथ ही अयन कड़ा हो जाता हैं, उसको दबाने से दर्द नही होता है। अंत में दूध बिल. कुल नही निकलता और अयन की दुग्ध निर्माण क्षमता हमेशा के लिए खत्म हो जाती है।

रोग निदान के प्रमुख परिक्षण निम्नलिखित है–

(1) अयन के भौतिक परिक्षण एवं दूध के अस्वाभाविक दर्शनीय गुणों को दे खकर रोग का निदान आसानी से किया जा सकता है।

(2) **कैलीफोर्निया थनैला परिक्षणः** इस विधि में प्लास्टिक के कप वाले विशेष बर्तन में चारो थनों में से थोडा थोडा दूध लेते है फिर फिर प्रत्येक कप में दूध की मात्र के बराबर थनैला जाँच रीएजेंट डालकर पुरे बर्तन को धीरे धीरे हिलाते है जिससे रीएजेंट और दूध अच्छी तरह मिल जाते है। थनैला रोग होने की स्थिति में दूध तुरंत जेली की तरह गाढ़ा हो जाता है अन्यथा सामान्य रहता है। इस परिक्षण में कैलीफोर्निया थनैला रीएजेंट के स्थान पर सोडियम लारेल सल्फेट के डिस्टिल वाटर में 4% घोल का भी उपयोग कर सकते है। निदान के लिए रीएजेंट जाँच विधि अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योकि रोग की प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्यक्ष लक्षण न दिखने की स्थिति में भी इसके द्व ारा रोग का पता लगा सकते हैं।

चिकित्साः

रोग की स्थिति में रोकथाम अत्यंत आवश्यक है इसके लिए पशु चिकित्सक की देखरेख में उपयुक्त उपचार करना चाहिए।

बाहरी उपचारः अतितीव्र अवस्था में सुजन कम करने के लिए अयन पर बर्फ लगायें बर्फ न रहने पर मटके के ठंडे पानी का उपयोग भी लाभकारी होता है। अन्य स्थिति में मैग्नीशियम सल्फेट युक्त गरम पानी से हल्की सिकाई करें। सुजन व दर्द कम करने के लिए मलहम लगायें।

आंतरिक चिकित्साः थनैला रोग केचिकित्सा के लिए यह आवश्यक है कि रोग की प्रारंभिक मेनिदन करके रोग्के कारण के अनुरूप चिकित्सा की जाये। इसमें कम खर्च में और कम समय में पशु को रोगमुक्त कर सकते है। इस रोग्के उपचार के लिए निम्नलिखित औषधियां बाजार में उपलब्ध हैं जिनमे निम्नाकित उल्लेखनीय है।

(1) अन्तः स्थनीय औषधियां– इस विधि से उपयोग करने के लिए पेंडीस्ट्रिन, एस.एच. टाईलाक्स, मेमिटेल आदि औषधियां बाजार में उपलब्ध हैं। रोग ग्रस्त थनों से दूध निकालने के बाद दुग्ध नली के मार्ग मे औषधि अयन के भीतर प्रविष्ट कर दी जाती है और हल्के मालिश से उसे भीतरी हिस्से में फैला दिया जाता है ।

(2) अन्य औषधियांः तीव्र थनैला रोग में पशु को कभी–कभी ज्वर आ जाता है। इस स्थिति में अयन के स्थानीय उपचार के अतिरिक्त ज्वर निरोधक औषधियों (इंजेक्शन वेटालजिन, बोलिन आदि) के साथ एंटीबायोटिक (टेरामाइसिन, डाइक्रिस्टीसिन, एम्पिसिलिन, क्वाक्सासिलिन आदि) औषधियां इंजेक्शन विधि से देने पर शीघ्र लाभ होता है।

रोग से बचावः रोग से बचाव के लिए स्वच्छता सम्बन्धी उपाय सर्वाधिक उपयोगी है। थनों को दूध दुहने से पहले जीवाणु नाशक औषधियोजैसे लाल दवा जलीय घोल से धोना चाहिए। दूध लगाने के बर्तन एवं उपकरण साफ होने के साथ दूध दुहने वाला व्यक्ति भी साफ–सुथरा एवं रोगमुक्त विशेष रूप से क्षयरोग से मुक्त होना चाहिए रोगी पशु की स्वस्थ्य पशु से सदैव अलग रखकर उसका उपचार करना चाहिए और उसको सबसे अंत में दुहना चाहिए। पशु के अयन के सामान्य घाव का उपचार भी तुरंत करना चाहिए। पशु के दूध दुहने की अवधि खत्म होने पर उसका दुहना एकाएक बंद

करने के स्थान पर धीरे–धीरे बंद करना चाहिए और अंत में चारो थनों के माध्यम से एंटीबायोटिक औषधि भरकर दूध दुहना अगली ब्यात तक के लिए बंद कर देना चाहिए।

इस प्रक्रिया से थनैला रोग होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। दूध के माध्यम से फैलने वाले रोगों से बचाव के लिए मनुष्यों एवं बच्चे को कच्चा दूध का सेवन कभी भी नही करना चाहिए वरन दूध का उपयोग भली भांति उबालकर ही करना चाहिए। यथा संभव पास्चुरिकृत दूध का उपयोग लाभकारी रहता है। सामान्य स्थितियों में दूध को पशु से निकालकर मनुष्य के पास उपयोग के लिए पहुचने का समय एक घंटे से अधिक नही होना चाहिए। अन्य स्थितियों में दूध का शीतन अथवा पास्चुरीकरण अनिवार्य हो जाता है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना
पर ड्रॉप मो क्रॉप-माइक्रो इरीगेशन

डॉ. राहुल कुमार सिंह (कृषि प्रसार)

उद्देश्य :

दिन-प्रतिदिन जल स्तर में हो रही कमी में सुधार हेतु भू-जल संचयन, उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि के दृष्टिगत ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति के माध्य से पौधों को सीधे विभिन्न प्रकार के संयंत्रों पाइप, तकनीकियों को अपनाकर उनकी उम्र, आवश्यकता के अनुसार जल उपलब्ध कराकर गुणवत्तांयुक्त उत्पादन, जल व ऊर्जा की बचत में योगदान किया जाना है।

ड्रिप/स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति से लाभ :

- पानी केवल पौधों की जड़ों में देने से पानी की निश्चित बचत।
- पाने देने के लिए मेड व नालियाँ बनाने की आवश्यकता नहीं।
- पैदावार तथा फसल की गुणवत्ता में अत्याधिक वृद्धि।
- केवल जड़ों में पानी देने से खरपतवार पर प्रभावी नियंत्रण।
- पौधों की जड़ों में सिंचाई के साथ ही उर्वरक के प्रयोग से परम्परागत छिड़काव पद्धति की तुलना में उर्वरक के बचत।
- ड्रिप सिंचाई पद्धति से लवणीय भूमि में भी बागवानी सम्भव।
- ऊँची-नीची (ऊबड़-खाबड़) जमीन में पौधों की सिंचाई भलीभांति सम्भव।
- कीट एवं व्याधियों का उचित प्रबन्धन।
- सिंचाई कार्य में व्यय होने वाले समय की बचत के फलस्वरूप अन्य कार्यों में समय का उपयोग।

विभिन्न फसलों के लिए सुझाया गया प्रणाली चयन

क्र.सं.	फसल	प्रणाली	अभ्युक्ति
	बागवानी फसलें		
1	आम, आँवला, लीची, अमरुद, नींबू वर्गीय बेर, बेल, शरीफा, अनार, पपीता आदि	ड्रिप सिंचाई पद्धति	पौधों से पौधों की दूरी के अनुसार अधिक दूरी वाले एवं कम दुर्री वाले प्रणाली का चयन किया जाये।
2	केला	ड्रिप सिंचाई पद्धति	जल बीच में फसल उगाई जाती है, यदि इसकी पानी की जरुरत को केले के साथ समायोजित किया जा सकता है, स्प्रिंकलर को चुना जाना चाहिये। यदि उपर्युक्त नियंत्रण सहित दोनों फसलों के लिए ड्रिप का प्रयोग किया जाना चाहिये । यदि खरीफ के साथ अल्पकालीन फसल ली जाती है, बीच में उगाई जान वाली फसल के लिए अलग से एम आई प्रणाली की जरुरत नहीं होती।
3	आलू	ड्रिप/मिनी स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति	जल की कमी के आधार पर, यदि आलू को अनाज वाली फसल के साथ क्रम से उगाया जाता है, स्प्रिंकलर का प्रयोग किया जा सकता है । यदि इसे मुंगफली जैसी फसल के बाद उगाया जाता है, पहली फसल के लिए प्रयुक्त प्रणाली को बाद वाली फसल के लिए प्रयोग किया जाना चाहिये।

4	अन्य फसल के साथ उद्यान फसल	ड्रिप/मिनी स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति	मुख्य और अंत: फसल की पानी जरुरत के आधार पर, यदि अल्पकालीन फसलें जैसे सब्जियों/अल्प संतृप्त दालें खरीफ के दौरान उगाई जाती हैं, अतः फसल (इंटरक्रॉप) के लिए अतिरिक्त प्रणाली मुहैया नहीं कराई जाती।
5	प्याज/लहसुन/ धनिया और अन्य छोटी संतृप्त फसलें	मिनी स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति	यदि इस फसलों को किसी ड्रिप प्रतिक्रियाशील नगदी फसल से पहले अथवा बाद में उगाया जाता है, तक दोनों फसलों के लिए समान प्रणाली (अभिमानतः इन-लाइन उत्सर्जक प्रणाली) को प्राथमिकता दी जाती है। यदि इस फसलों को अनाज फसलों के पहले या बाद में उगाया जाता है तो फव्वारा सिंचाई को प्राथमिकता दी जाती है।
6	सब्जियाँ जैसे : टमाटर, बैगन, भिण्डी आदि और करेले ज्यादा अंतराल जैसे खीरा और अंगूर।	ड्रिप सिंचाई पद्धति	
7	नर्सरियाँ	माइक्रो/मिनी स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति	

(ब) कृषि फसलें			
	अनाज जैसे गेहूँ, मक्का, बाजरा, ज्वार	स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति	
	मूंगफली	ड्रिप/मिनी स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति	जल की गैर मौजूदगी और हवादार परिस्थितियों में उच्च वायु गति वाली व्यवहार्य नहीं है।
(स) गन्ना फसलें			
	गन्ना पंक्तिबद्ध रूप में अंतः फसल के साथ	ड्रिप/मिनी स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति	यदि गन्ने और बीच में उगाई जाने वाली फसल की पानी की जरुरत से ज्यादा अंतर नही है, मिनी स्प्रिंकलर का प्रयोग किया जा सकता है। खरीफ के दौरान बीच में उगाई जाने वाली फसल अगर अल्पकालीन है तो अतिरिक्त प्रणाली नहीं डी जायेगी।

फसल सुरक्षा के लिए बायोपेस्टिसाइड्स का प्रयोग

डॉ. आर. पी. सिंह (फसल सुरक्षा)

संकुचित अर्थों में ऐसे जैवनाशी जो स्वभाव में जीवित/अर्धजीवित होते हैं (जैसे विषाणु, जीवाणु, कवक, शत्रुकीटों के प्राकृतिक शत्रु आदि), उन्हें बायोपेस्टिसाइड्स खा जाता है किन्तु व्यापक टूर पर जैविक स्त्रोतों से प्राप्त किये जाने वाले सभी पदार्थ जो पादप रोजजनकों तथा पादपभक्षी शत्रुकीटों से फसल की सुरक्षा के काम में लाये जाते हैं अथवा जैव-उत्पत्ति के होते हैं, बायोपेस्टिसाइड्स कहे जाते हैं । इनमें विषाणु, जीवाणु, कवक, कीट, फेरोमोन एवं पादप, जन्तुओं अथवा सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पादित पदार्थ सम्मिलित होते हैं । जीवित बायोपेस्टिसाइड्स के उदाहरणों में जैवकवकनाशी (ट्राइकोडर्मा), जैवतृणनाशी (फाइताफ्थोरा) तथा जैवकीटनाशी (बैसिलस थूरिंगजिएंसिस-बीटी) प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त पौधों, जंतुओं तथा सूक्ष्मजीवों के कतिपय उत्पाद भी फसल सुरक्षा के लिए प्रयोग किए जाते हैं। इतना ही नही, बायोपेस्टिसाइड्स के अंतर्गत पादप-निगमित-रक्षक पदार्थ (प्लांट इंकॉर्पोरेटेड प्रोटेक्टेण्ट्स-पीआईपी) भी आते हैं जो कि पौधों में ही उनके आनुवंशिक आशोधन के माध्यम से उत्पादित किए जाते हैं और शत्रुजीवों के विरुद्ध प्रभावी होते हैं । इनके उदाहरणों में प्रमुख रूप से फसलों की बीटी प्रजातियों (कपास, बैंगन आदि), पौधों में प्रोटिएज निरोधक, लेक्टिन्स, काइटिनेज आदि का फसलों के पौधों के जीन में समावेश करके विकसित की जाने वाली प्रजातियाँ आती हैं । ये पदार्थ प्राकृतिक तथा जन्तुओं, पौधों, सूक्ष्मजीवों एवं कतिपय असंश्लेषी खनिजों से उत्पन्न होने के कारण पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी के लिए अत्यंत सुरक्षित माने जाते हैं । बायोपेस्टीसाइड्स लक्षित शत्रुजीव की प्रजाति के प्रति अत्यंत ही विशिष्ट होते हैं और अलक्षित जीवों को इनसे किसी भी प्रकार का ख़तरा नही रहता । बायोपेस्टीसाइड्स कृषि में फसल सुरक्षा रसायनों के द्वारा होने वाली हानि तथा पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी पर इन रसायनों के दुष्प्रभाव से मुक्ति पाने के लिए

उत्तम विकल्प के रूप में सामने आते हैं। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य के प्रति उपभोक्ताओं की जागरूकता और बाजार में कार्बनिक खाद्य अथवा आर्गेनिक फ़ूड की बढती मांग के दृष्टिगत केवल फसल सुरक्षा ही नहीं, कृषि की सम्पूर्ण प्रक्रिया में बायोपेस्टीसाइड्स की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। सामान्य तौर पर सभी प्रकार की कृषि प्रणालियों में बायोपेस्टीसाइड्स का प्रयोग समेकित फसल सुरक्षा के एक संघटक के रूप में किया जा सकता है।

संक्षेप में, बायोपेस्टीसाइड्स के निम्नलिखित लाभ है :

1. स्वाभाविक रूप से कम हानिकारक और कम पर्यावरणीय भार
2. ये केवल एक विशिष्ट कीट को प्रभावित करने के लिए डिजाईन किये जाते हैं या, कुछ मामलों में, कुछ ही लक्ष्यजीवों के प्रति विशिष्ट रूप से प्रभावी होते हैं ।
3. बायोपेस्टीसाइड्स अक्सर बहुत कम मात्रा में ही प्रभावी होते हैं और अक्सर जल्दी से अपघटित हो जाते हैं, जिससे बहुत ही कम जोखिम के साथ काफी हद तक प्रदूषणकी समस्याओं से बचा जाता है और
4. समेकित शत्रुजीव प्रबंधन (आईपीएम) कार्यक्रमों के घटक के रूप में बायोपेस्टीसाइड्स बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं।

जहाँ तक भारतवर्ष में बायोपेस्टीसाइड्स के प्रयोग का प्रश्न है, अभी भी दूसरे देशों की तुलना में यह काफी कम है। बायोपेस्टीसाइड्स का वैश्विक उत्पादन कुल जैवनाशियों की मात्रा का ४.५ प्रतिशत है। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह आँकड़ा ६ प्रतिशत का है जबकि भारत में उत्पादित जैवनाशियों में बायोपेस्टीसाइड्स की भागीदारी केवल ३ प्रतिशत ही है। जहाँ तक भारत वर्ष में जैवनाशियों के बाजार का प्रश्न है, निकट भविष्य में अवश्य ही इसके बढ़कर ४.२. प्रतिशत तक होने की संभावना है। अधिकांश देशों ने रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग को कम करने और जैव कीटनाशकों के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए अपनी नीतियों में संशोधन किया है, हालाकिं जैव कीटनाशकों को अभी भी काफी हद तक इस प्रणाली द्वारा नियंत्रित

किया जाता है जो मूल रूप से रासायनिक कीटनाशकों के लिए डिजाईन की गी है। इसने बायोपेस्टीसाइड्स उद्योग पर भारी लागत लगाकर बाजार में इसके प्रवेश में बाधाएँ उत्पन्न की हैं। यद्यपि बायोपेस्टीसाइड्स के प्रभावी उपयोग के लिए कई तकनीकी और नीतिगत रिक्तियों की पहचान की गई है, उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर समुचित रूप से संबोधित करने की आवश्यकता है। रासायनिक कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग को कम करने और जैव कीटनाशकों के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए नीतिगत उपायों को मजबूत करने की आवश्यकता है।

कीटनाशक अधिनियम, १९६८ के तहत भारत में, अब तक केवल १२ जैव कीटनाशकों के प्रकार को पंजीकृत किया गया है। इनमें नीम आधारित कीटनाशक, बैसिलस थुरिंजिएंसिस, एनपीवी और ट्राईकोडर्मा प्रमुख हैं। भारत में उत्पादन और उपयोग किया जाता है। जबकि १९० से अधिक सिंथेटिक्स रासायनिक कीटनाशकों के रूप में उपयोग के लिए पंजीकृत हैं, स्वास्थ्य और कृषि में उपयोग किए जाने वाले कुछ को छोड़कर अधिकाँश बायोपेस्टीसाइड्स सार्वजनिक रूप से उपयोग किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त भारत में फसल सुरक्षा के लिए क) ट्रांसजेनिक पौधों और ख) जैव अभिकर्मक नामक लाभकारी जीव उपयोग किए जाते हैं।

सारणी-१: कीटनाशक अधिनियम, १९६८ के अंतर्गत पंजीकृत बायोपेस्टीसाइड्स

क्रम संख्या	**बायोपेस्टीसाइड्स का नाम**
1	ब्यूवेरिया वैसियाना
2	एम्पीलोमाइसीज किव्स्क्वैलिस
3	मेटाराइजियम एनिसोप्ली
4	वैसिलस थूरिंजिएन्सिस प्रजाति इजरायलेन्सिस
5	बैसिलस थूरिंजिएन्सिस प्रजाति कुर्स्टाकी
6	बैसिलस थूरिंजिएन्सिस प्रजाति गैलरी

7	बैसिलस थूरिंजिएन्सिस प्रजाति स्फीरिकम
8	वर्टीसीलियम क्लैमाईडोस्पोरियम
9	वर्टीसीलियम लेकानी
10	सिम्बोपोगान
11	हेलिकोवर्पा के लिए एनपीवी
12	स्यूडोमोनास फ्लुओरेसेंस
13	स्पोडोप्टेरा के लिए एनपीवी
14	नीम आधारित जैवनाशी
15	ट्राईकोडर्मा विरिडी
16	ट्राईकोडर्मा हर्जियानम

पीड़कनाशियों के रूप में पादप उत्पादों का प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है और संश्लेषित रासायनिक पीड़नाशियों के आविष्कार के बाद इनके विकास एवं परिवर्धन में कुछ शिथिलता आ गयी थी किन्तु संश्लेषित रसायनों के दुष्प्रभावों के आकलन के पश्चात पादपजनित प्राकृतिक पीड़कनाशियों (बोटेनिकल्स) का महत्त्व और भी बढ़ गया है । पादपजनित पीड़कनाशी सिद्धांतों और सूत्रों की खोज के इए अनुसंधान संस्थाओं द्वारा विश्व भर में विभिन्न स्तरों पर पौधों की प्रजातियों का अनुवीक्षण किया जा रहा है । बायोपेस्टीसाइड्स के रूप में पंजीकृत कुछ पादप उत्पादों को सारणी-सारणी में प्रस्तुत किया गया है ।

सारणी-२: बायोपेस्टीसाइड्स के रूप में पंजीकृत कुछ बोटेनिकल्स

क्र.सं.	बायोपेस्टीसाइड्स के रूप में पंजीकृत पादप उत्पाद (बोटेनिकल) का नाम	लक्षित शत्रुजीव
1.	लिमोनीन और लिनालूल	पिस्सू (फ्ली), माहू और चिंचडी (माइट), फायर एंट्स, विभिन्न प्रकार की मक्खियाँ, पेपर वैस्प्स और घरेलू झींगुर

2.	नीम	चूषक तथा चर्वण प्रकार के मुखांग वाले अनेक कीट
3.	पायरेथ्रम/पायरेथ्रिन्स	चींटियाँ, माहू, तिलचट्टे, पिस्सू, मक्खियाँ और जुएँ
4	रोटिनोन	पत्तियाँ खाने वाले कीट, माहू, अनेक प्रकार के भृंग (जैसे घुतकुमारी भृंग, सेम पर्ण भृंग, कोलोरेडो पोटेटो भृंग, ककड़ी भृंग, फ्ली बीटल, स्ट्राबेरी पर्ण भृंग एवं अन्य), कैटरपिलर, पालतू पशुओं के पिस्सू और जुएँ
.5.	रायनिया	कैटरपिलर (यूरोपियन कॉर्न बोरर, कॉर्न एयरवर्म तथा अन्य) एवं थ्रिप्स
6.	स्बाडिला	स्क्वाश बग, हार्लेक्विन बग, थ्रिप्स, कैटरपिलर्स, पर्णफुदके और सिटंक बग

उपरोक्त सभी पादप उत्पादों में नीम संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रभावी बोटेनिकल है। अकेले नीम उत्पाद संधिपाद (आर्थ्रोपोड) प्राणियों की ३५० से अधिक प्रजातियों, सूत्रकृमियों की १२ प्रजातियों, कवकों की १५ प्रजातियों, तीन प्रकार के विषाणुओं, घोंघे की दो प्रजातियों और पर्पटीय (क्रस्टेशियन) प्राणियों की कम से कम एक प्रजाति के विरुद्ध प्रभावी होते हैं।

बायोपेस्टीसाइड्स के प्रयोग की सीमाएँ : किसान ऐसे कीटनाशकों का उपयोग करने के आदि हो चुके हैं जो शेल्फ से पैक और उपलब्ध हों । संश्लेषित रासायनिक पीड़कनाशी संरूप की उपयुक्तता और प्रयोग में आसानी के अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण अल्प समय में ही बहुत लोकप्रिय हो गये। हालांकि किसानों को रासायनिक

कीटनाशकों के विकल्प के रूप में पादप उत्पादों के उपयोग के महत्व का पूरा-पूरा अनुमान है किन्तु इन पादप उत्पादों के व्यापक उपयोग को सुनिश्चित करने में थोडा समय लगेगा । जिन तरीकों से बायोपेस्टीसाइड्स को और लोकप्रिय बनाया जा सकता है, उनमें से एक प्रक्रिया यह है कि इन्हें किसानों के लिए कृषि रक्षा केन्द्रों पर न केवल सहज रूप में उपलब्ध कराया जाए बल्कि इनके प्रभावशाली को सुनिश्चित करने के लिए इनका भंडारण और सार-सँभार उचित रूप से प्रशिक्षित कर्चारियों द्वारा ही किया जाय ।

भविष्य में बायोपेस्टीसाइड्स : भारत का समृद्ध जैव-विविधता एक ऐसा कारक है, जो हमेशा बायोपेस्टीसाइड्स का एक विस्तृत स्त्रोत प्रदान करने में सक्षम है । यह बड़े पैमाने पर कृषि में प्रभावी रूप से उपयोग किया जा सकता है । साथ ही साथ अमीर भारतीय नागरिकों की चेतना भोजन की मांग न केवल पैदा की है वरन इसमें आशातीत वृद्धि भी संभावित है । यह सब बायोपेस्टीसाइड्स के विशाल क्षेत्र के विकास की बड़ी संभावना को इंगित करता है । भारत में अत्यधिक विविध स्वदेशी समुदायों के साथ उपलब्ध पारम्परिक ज्ञान का आधार बढ़ रहा है जो नित नए और प्रभावी बायोपेस्टीसाइड्स विकसित करने के लिए मूल्यवान सुराग प्रदान कर सकते हैं । उत्पादन, निर्माण और वितरण में अनुसंधान बायोपेस्टीसाइड्स के व्यवसायीकरण में बहुत मदद क्र सकता हैं । उत्पादन प्रणाली में जैविक एजेंटों को एकीकृत करने, जैव कीटनाशकों के निर्माण और उपयोग करने के लिए विकासशील देशों की क्षमता में सुधान के लिए अधिक शोध की आवश्यकता है । साथ ही, सार्वजनिक वित्त पोषित कार्यक्रमों, वाणिज्यिक निवेशकों और कीटनाशकों कंपनियों को बायोपेस्टीसाइड्स उद्यम लेने के लिए प्रोत्साहित करना भी आवश्यक है । समान रूप से महत्वपूर्ण विकासशील देशों में सस्ती लागत पर बायोपेस्टीसाइड्स की गुणवत्ता और उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए सख्त नियामक तन्त्र का विकास आवश्यक है । इस प्रकार, मानव स्थिति के लाभ के लिए उनके प्रभावी उपयोग की दिशा में वर्तमान स्थिति, बाधाओं, संभावनाओं और नियामक नेटवर्क को कवर करने

वाले बायोपेस्टीसाइड्स के विभिन्न पहलुओं की नियमित रूप से समीक्षा किये जाने की आवश्यकता है।

मक्का की उन्नत खेती

श्री अवनीश कुमार सिंह (सस्य विज्ञान)

मुख्य खाधान्न फसलों में मक्का का विशेष स्थान है। मक्का को अनाज ,दाना एवं चारे के रूप में उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में मक्के की विभिन्न किस्मों को भिन्न प्रकार से खाने के उपयोग में लाया जा रहा है। जैसे पॉपकॉर्न, स्वीटकॉर्न, बेबीकॉर्न तथा ग्रीनकॉर्न आदि।

जलवायु – मक्का की खेती भारत वर्ष में पूरे साल ली जाती है। बुवाई के समय वायुमंडल का तापक्रम 18-20° C होना चाहिए। मक्का की बढ़वार हेतु तापक्रम 25 -30° से०ग्रे० उपयुक्त होता है।

भूमि का चुनाव तथा तैयारी – मक्का की खेती अधिक जीवांश युक्त, अच्छे जल निकास युक्त दोमट भूमि में की जा सकती है। दो-तीन बार हैरो से जुताई कर भूमि को भुरभुरा कर बुवाई युक्त बना लेना चाहिए। पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए।

बीज की मात्रा –

संकर मक्का के लिए	- 20-25 कि०ग्रा०/हे०
संकुल मक्का के लिए	- 15-18 कि०ग्रा०/हे०
पॉपकॉर्न मक्का के लिए	- 13-15 कि०ग्रा०/हे०
हरे चारे के लिए	- 40-45 कि०ग्रा०/हे०

बुवाई का समय –

खरीफ में	– जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक
रबी में	– 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक
जायद में	– मार्च का दिव्तीय सप्ताह

बुवाई तथा बीजोपचार – बुवाई हमेशा पंक्तियों में करनी चाहिए। वर्षा ऋतु में फसल को उठी हुई मेड़ो या रेज्ड बेड पर बोना चाहिए। सामान्यतः मक्के की बुवाई 50-60 से.मी. पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 20-30 से.मी. रखनी

चाहिए। बुवाई से पूर्व बीजों को उपचारित करना अति आवश्यक है। बीज उपचार करने से बीज जनित फफूंद तथा एनी रोगों से सुरक्षा के साथ-साथ बीजों का अंकुरण भी बढ़ जाता है। बीजों को फफूंद नाशक दवा कार्बेन्डाजिम 2 ग्रा. या कार्बोक्सिन+थायरम 2.5 ग्रा. प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। फफूंद नाशक दवा से बीज उपचार के बाद थायोमिथाक्जाम 70 डब्ल्यू.एस. की 3 ग्रा. मात्रा से प्रति किलो बीज का उपचार कीड़ो की रोकथाम के लिए करें। इसके बाद पी.एस.बी. व ऐजैक्येबैकटर की 5-5 ग्रा. मात्रा से बीज उपचार करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक – मक्का की फसल के लिए बुवाई से पूर्व 4-6 टन प्रति एकड़ की दर से गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए। रसायनिक उर्वरकों की मात्रा मिटटी परीक्षण के आधार पर देनी चाहिए।

	नत्रजन (कि.ग्रा./हे.)	स्फुर (कि.ग्रा./हे.)	पोटाश (कि.ग्रा./हे.)
संकर मक्का	100	60	40
संकुल मक्का	80	40	30
स्वीट कॉर्न	100	60	40
बेबी कॉर्न	150	60	40
पॉप कॉर्न	80	60	40

25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट का प्रयोग प्रति हे. की दर से करना चाहिए। गोबर की खाद 10 टन प्रति हे. प्रयोग करने पर 25% न. की मात्रा कम कर देनी चाहिए।

विधि – बुवाई के समय एक तिहाई नत्रजन, पूर्ण फॉस्फोरस तथा पोटाश कूड़ों में बीज के नीचे डालना चाहिए। शेष न. दो बार में बराबर-बराबर मात्रा में टॉप ड्रेसिंग के रूप में डालनी चाहिए। पहली टॉप ड्रेसिंग बोने के 25-30 दिन बाद (निराई के तुरंत बाद) एवं दूसरी नर मंजरी निकलते समय करें। यह अवस्था संकर मक्का में 50-60 दिन बाद एवं संकुल मक्का में 45-50 दिन बाद आती है।

प्रजाति	पकने की अवधि	उपज (कु./हे.)
1.संकर मक्का		
एच.पी.क्यू.एम. 1	88-90	60-65
शक्तिमान 1	86-95	60-70
एच.पी.क्यू.एम. 4	100-105	
गंगा 2	100-105	40-45
शक्तिमान 2	90-95	55-60
एच.पी.क्यू.एम. 5	88-90	60-65
पूसा संकर मक्का 5	80-85	35-45
प्रकाश	80-85	40-45
सीडटेक 2324	155-160	70-80
2. संकुल मक्का		
जे.एम.-12	83-87	47-53
पूसा कम्पोजिट – 2	85-90	35-40
जे.एम. – 8	83-87	40-45
आजाद उत्तम	80-85	30-35
विवेक -27	75-80	25-30
जे.एम. -421	98-100	38-40
प्रो- 316	105-110	40-45
बायो 9681	105-110	40-45
चन्द्रमणी	125-130	45-50
शक्ति – 1	76-85	40-45
जे. एम. -13	135-150	61-65

मक्का की उन्नत किस्में –

पॉपकॉर्न		
अम्बर पॉपकॉर्न	135-140	30-35
वी.एल.अम्बर पॉपकॉर्न	135-140	30-35
पर्ल पॉपकॉर्न	135-140	30-35
जवाहर पॉप-11	85-95	24-28
स्वीट कॉर्न		
माधुरी	120-125	
प्रिया	120-125	
बेबी कॉर्न		
बी.एल.-42		
प्रकाश		
पूसा संकर 1,2 तथा 3		
एच.एम.- 4		

खरपतवार नियंत्रण :- फसल को 35-40 फ्दीन तक खरपतवार मुक्त रखना अति आवश्यक है। बुवाई के 15-20 दिन तथा 35-40 दिन बाद खेत में निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। रासायनिक विधि से नींदा नियंत्रण हेतु 2,4-डी सक्रिय तत्व 750 मि.ली./हे. की दर से बुवाई के 25-30 दिन बाद अथवा लासो सक्रिय तत्व 1500-2000 मि.ली./हे. या एट्राजिन सक्रिय तत्व 750-1000 मि.ली./हे. या मेटोलाक्लोर सक्रिय तत्व 1000 मि.ली./हे. बुवाई के बाद 2-3 दिन के भीतर प्रयोग कर सकते है। बुवाई के 15-20 दिन के अन्दर पौध विरलन कर देना चाहिए जिससे पौधों की वांछित संख्या बनी रहे तथा अच्छी वृद्धि हो सके।

सिंचाई – मक्का में पानी की कमी नहीं होने देना चाहिए। मंजरी एवं बाली निकलते समय नमी की कमी नही होनी चाहिए। बुवाई से लेकर भुट्टा निकलने तक 4-5

सिंचाई की आवश्यकता होती है ।

कीट एवं रोग नियंत्रण –

तना छेदक – इस कीट की सूड़ियाँ तनो में छेद करके अन्दर ही खाती रहती है जिससे मृतगोम बन जाता है और हवा चलने पर पौधा बीच से टूट जाता है ।

उपचार – फोरेट -10 जी की 5-6 कि.ग्रा. मात्रा प्रति एकड़ की दर से उपयोग करें । इमिडाक्लोप्रिड 6 मि.ली./हे. बीज की दर से बीज उपचार करें ।

पत्ती लपेटक कीट – इस कीट की सुड़ियाँ पत्ती के दोनों किनारों को रेशम जैसे सूत से लपेटकर अन्दर से खाती है ।

उपचार – इमिडाक्लोप्रिड 6 मि.ली./कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार करें । क्यूनालफास 25 ई.सी. 2 ली./हे. की दर से छिड़काव करें ।

कमला कीट – इस कीट की गिडारे पत्तियों को बहुत तेजी से खाती है और फसल को काफी हानि पहुँचाती हैं । इसके शरीर पर रोंये होते है ।

उपचार – मिथाइल पैरोथियान 2 प्रतिक्षत चूर्ण 20 कि.ग्रा./हे. या क्लोरपायरीफास 20 ई.सी. 100 ली./हे. या डाइकलोरवास 70 ई.सी. 650 मि.ली./हे. का छिड़काव करें ।

प्रमुख रोग –

झुलसा रोग – इसकी रोकथाम हेतु कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम या मेनकोजेण 3 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें ।

मोजैक - इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 50-60 मि.ली. मात्रा का प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें ।

तना सडन – यह रोग अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में लगता है । रोग दिखाई देने पर 15 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन तथा 500 ग्रा. कॉपर ओक्सीक्लोराइड प्रति हे. की दर से छिड़काव करना चाहिए ।

अन्य क्रिमाए – वर्षा के पानी और तेज हवा से फसल को बचाने के लिए पौधों की जडो पर मिटटी पलटने वाले हल से मिटटी चढ़ा देनी चाहिए ।

कटाई-मड़ाई – फसल पकने पर भुट्टों को ढकने वाली पत्तियाँ जब पीली पड़ने लगे तो कटाई कर लेनी चाहिए। भुट्टों की तुड़ाई करके ऊपर की पत्ती छील कर धूप में सुखा कर हाथ या मशीन द्वारा दाना निकाल लेना चाहिए।

उपज – उन्नत तकनीक अपनाकर किस्म अनुसार खरीफ में लगभग 50-60 कि्./हे. तथा रबी में 65-85 कि्./हे. उपज प्राप्त की जा सकती है।

उन्नत मत्स्य पालन तकनीक

डॉ विवेक प्रताप सिंह (पशु विज्ञान)

जनसंख्या मे निरन्तर वृद्धि के परिणाम स्वरूप रोजी–रोटी की समस्या के समाधान के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आज के विकासशील युग में ऐसी योजनाओं का क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाय जिनके माध्यम से खाद्य पदार्थों के उत्पादन के साथ–साथ भूमिहीनों, निर्धनों, बेरोजगारों, मछुआरों आदि के लिये रोजगार के साधनों का सृजन भी हो सके। उत्तर प्रदेश एक अन्तर्स्थलीय प्रदेश है जहां मत्स्य पालन और मत्स्य उत्पादन की दृष्टि से सुदूरवर्ती ग्रामीण अंचलों में तालाबों व पोखरों के रूप में तमाम मूल्यवान जल सम्पदा उपलब्ध है। मछली पालन का व्यवसाय निःसंदेह उत्तम भोजन और आय का उत्तम साधन समझा जाने लगा है। तथा इस आशय की जानकारी परम आवश्यक है कि मछली का उच्चतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए कौन–कौन सी व्यवस्थायें अपनायी जायें?

तालाब का चयन

मत्स्य पालन हेतु 0.2 से 2.00 हेक्टर तक के ऐसे तालाबों का चुनाव किया जाना चाहिए जिनमें कम से कम वर्ष में 8–9 माह अथवा वर्ष भर पानी बना रहे। तालाबों को सदाबहार र खने के लिए जल की पूर्ति का साधन अवश्य उपलब्ध होना चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर जल की आपूर्ति की जा सके। तालाब में वर्ष भर 1–2 मीटर पानी अवश्य रहे। तालाब उसी प्रकार के चुने जायें जिनमें मत्स्य पालन आर्थिक दृष्टि से लाभकारी हो और उनकी प्रबन्ध ा व्यवस्था सुगमता से संभव हो सके। यह भी ध्यान देने की बात है कि तालाब बाढ़ से प्रभावित न होते हो और उन तक आसानी से पहुंचा भी जा सके।

तालाब का सुधार

अधिकांश तालाबों में बंधों का कटा–फटा या ऊँचा–नीचा होना, पानी आने जाने के रास्तों का न होना अथवा दूर के क्षेत्रों से अधिक पानी आने की सम्भावनाओं का बना रहना आदि कमियां स्वाभाविक रूप से पायी जाती हैं जिन्हें सुधारोपरान्त दूर किया जा सकता है। तालाब को समतल बनाने के लिए यदि कहीं पर टीले हों तो उनकी मिटटी निकाल कर बंधों पर डाल देनी चाहिए। कम गहराई वाले स्थान से मिटटी निकाल कर गहराई एक सामान की जा सकती है। बंधे बाढ़ स्तर से ऊँचे रखने चाहिए। पानी के निकास तथा पानी आने के मार्ग में उपयुक्त जाली की व्यवस्था हो ताकि अवांछनीय मछलियां तालाब में न आ सकें और पाली जाने वाली मछलियां बाहर न जा सकें। तालाबों का सुधार कार्य मई–जून तक अवश्य करा लेना चाहिए जिससे मत्स्य पालन समय से प्रारम्भ किया जा सके।

तालाब का प्रबंधन

अवांछनीय जलीय पौधों का उन्मूलन

पानी की सतह पर स्वतंत्र रूप से तैरने वाले जलीय पौधे उदाहरणार्थ जल कुम्भी, लेमना, पिस्टिया, अजोला आदि अथवा जड़ जमाकर सतह पर तैरने वाले पौध जैसे कमल इत्यादि अथवा जल में डूबे रहने वाले जड़दार पौध जैसे हाइड्रिला, नाजाज इत्यादि का तालाब में आवश्यकता से अधिक होना मछली की अच्छी उपज के लिए हानिकारक है। यह पौधे पानी का एक बहुत बड़ा भाग घेरे रहते हैं जिससे मछली के घूमने–फिरने में असुविधा होती है। साथ ही सूर्य की किरणों का जल में प्रवेश भी बाधित होता है जिससे मछली का प्राकृतिक भोजन उत्पन्न होना रूक जाता है और अन्ततोगत्वा मछली की वृद्धि प्रभावित होती है। जलीय पौधों का बाहुल्य जाल चलाने में भी बाधक होता है।

जलीय पौधों को श्रमिक लगाकर उखाड़कर फेंका जा सकता है। रसायनों का प्रयोग गांव के तालाबों में करना उचित नहीं होता क्योंकि उनका विषैलापन पानी में काफी दिनों तक बना रहता है। अतः अच्छा यही है कि अनावश्यक पौधों का उन्मूलन मानव शक्ति से ही किया जाय।

अवांछनीय मछलियों की सफाई

ऐसे तालाब जिनमें मत्स्य पालन नहीं हो रहा है और पानी पहले से मौजूद है में पढ़िन बैंगन, सौल, गिरई, सिंधी, मांगुर आदि अवांछनीय मछलियां स्वाभाविक रूप से पायी जाती हैं। जिनकी सफाई आवश्यक है। अवांछनीय मछलियों की सफाई बार–बार जाल चलवा कर अथवा 25 क्विंटल/हेक्टेयर/मीटर पानी की गहराई के हिसाब से महुए की खली के प्रयोग स्वरूप की जा सकती है। यदि महुआ की खली का प्रयोग किया जाता है तो 6–8 घंटों में सारी मछली ऊपर आकर मर जायेंगी जिसे उपभोग हेतु बेचा जा सकता है। महुए की खली के विष का प्रभाव 15–20 दिन तक पानी में बना रहता है। तत्पश्चात् यह उर्वरक का कार्य करती हैं और पानी की उत्पादकता बढ़ाती हैं।

जल–मृदा परीक्षण

मछली की उच्चतम पैदावार के लिये तालाब की मिट्टी–पानी का उपयुक्त होना आवश्यक है। मत्स्य पालकों को चाहिये कि वे अपने तालाब की मिटटी–पानी का परीक्षण मत्स्य विभाग की प्रयोगशालाओं द्वारा करा कर निर्धारित मात्रा में कार्बनिक व रसायनिक उर्वरकों के उपयोग हेतु संस्तुतियां प्राप्त कर वैज्ञानिक मत्स्य पालन अपनाएं।

जलीय उत्पादकता हेतु चूने का प्रयोग

चूना जल की क्षारीयता में वृद्धि करता है। अम्लीयता व क्षारीयता को संतुलित करता है। साथ ही यह मछलियों को विभिन्न परजीवियों के प्रभाव से मुक्त रखता है। बुझे हुए चूने का प्रयोग 250 कि.ग्रा.ध्हेक्टर की दर से मत्स्य बीज संचय से लगभग 1 माह पूर्व अथवा गोबर की खाद डालने के 15 दिन पूर्व किया जाना चाहिये।

उर्वरकों का प्रयोग

तालाब में गोबर की खाद तथा रसायनिक खादों का प्रयोग भी किया जाता है। सामान्यतः एक हेक्टेयर के तालाब में 10 टन प्रति वर्ष गोबर की खाद प्रयोग की जानी चाहिये। इस सम्पूर्ण मात्रा को 10 समान मासिक किश्तों में विभक्त करते हुए तालाब में डालना चाहिये। रसायनिक खादो का प्रयोग प्रत्येक माह गोबर की

खाद के 15 दिन बाद करना चाहिए, तथा प्रयोग दर निम्नवत् है :

यूरिया	200 किग्रा./हे/वर्ष
सिंगल सुपर फास्फेट	250 किग्रा./हे/वर्ष
म्यूरेट आफ पोटाश	40 किग्रा./हे/वर्ष
कुल	490 किग्रा./हे/वर्ष

मत्स्य बीज संचय

तालाब में 50 मि.मी. या अधिक लम्बाई की 5000 स्वस्थ अगुलिकायें प्रति हेक्टेयर की दर से संचित की जा सकती हैं। विभिन्न प्रजातियों हेतु संचय अनुपात निम्न हो सकते हैंμ

मत्स्य प्रजातियां	6 प्रजातियों का पालन	4 प्रजातियों का पालन	3 प्रजातियों का पालन
कतला	10 प्रतिशत	30 प्रतिशत	40 प्रतिशत
नैन	30 प्रतिशत	25 प्रतिशत	30 प्रतिशत
सिल्वर कार्प	15 प्रतिशत	20 प्रतिशत	30 प्रतिशत
ग्रास कार्प	20 प्रतिशत	–	–
कामन कार्प	10 प्रतिशत	–	–
रोहू	15 प्रतिशत	25 प्रतिशत	–

पूरक आहार दिया जाना

पूरक आहार के रूप में आमतौर पर मूंगफली सरसों या तिल की खली एवं चावल के कना अथवा गेहूं के चोकर को बराबर मात्रा में मिश्रण स्वरूप मछलियों के भार का 1–2 प्रतिशत की दर से प्रतिदिन दिया जाना चाहिये। यदि ग्रास कार्प मछली का पालन किया जा रहा है। तो पानी की वनस्पतियों जैसे लेमना, हाइड्रिला, नाजाज, सिरेटोफाइलम आदि तथा स्थलीय वनस्पतियों जैसे कैपियर बरसीम व मक्का के पत्ते इत्यादि जितना भी वह खा सकें, प्रतिदिन खिलाना चाहिए।

मछलियों की वृद्धि व स्वास्थ्य का निरीक्षण

प्रत्येक माह तालाब में जाल चलवा कर

मछलियों की वृद्धि व स्वास्थ्य का निरीक्षण किया जाना चाहिये। यदि मछलियां परजीवियों से प्रभावित हों तो एक पी.पी.एम. पोटशियम परमैंगनेट या 1 प्रतिशत नमक के घोल में उन्हें डुबाकर पुनः तालाब में छोड़ देना चाहिये। यदि मछलियों पर लाल चकत्ते व घाव दिखायी दें तो मत्स्य पालको को चाहिये कि वे मत्स्य विभाग के जनपदीय कार्यालय में तुरन्त सम्पर्क करें तथा संस्तुतियां प्राप्त कर आवश्यक कार्यवाही करें।

मछलियों की निकासी

12 से 16 माह के बीच जब मछलियां 1–1.5 कि.ग्रा. की हो जाये तो उन्हें निकलवा कर बेच द

संतुलित भोजन के लिए उगायें पोषण वाटिका में फल एवं सब्जियाँ

डॉ. राहुल कुमार सिंह (कृषि प्रसार)

शारीरिक स्वास्थ्य एवं उसके उचित विकास के लिए कई प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, मानव शरीर के सामान्य विकास के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न वर्गों के खाद्य पदार्थ जैसे अनाज, दालें, दूध, मांस मछली, फल एवं सब्जियों को दैनिक आहार में सम्मिलित किया जाये । इनमें फल व सब्जियों का विशेष महत्व है । आहार विशेषज्ञों के अनुसार दैनिक आहार में एक वयस्क व्यक्ति को प्रतिदिन लगभग 200 ग्राम सब्जी, जिसमें 100-125 ग्राम पत्तियों वाली, 80-120 ग्राम अन्य दूसरी सब्जियां तथा 85-100 ग्राम जड़ों वाली सब्जियां लेनी चाहिए । सब्जियां तथा फल हमारे पौष्टिक भोजन का एक अभिन्न अंग है और इनके नियमित सेवन से शरीर सुचारू रूप से कार्य होता है ।

स्वयं उगाई हुई गृह वाटिका की सब्जियां बाजार से खरीदी गयी अच्छी से अच्छी सब्जी से अधिक स्वादिष्ट एवं पौष्टिक होती हैं इसके साथ ही आर्थिक लाभ के अतिरिक्त परिवार के साथ कार्य करने से मिलकर काम करने की भावना विकसित होती है । गृहवाटिका में ताज़ी सब्जियां प्राप्त कर सकें व इनकी अधिकता होने पर आय का स्त्रोत भी बना सकें । बाजार से खरीदी गयी सब्जियां अक्सर बासी होती है जिसके कारण उनमे पौष्टिक तत्वों की भी कमी हो जाती है । गृहवाटिका में उगाई गयी सब्जियां हमें विषैली सब्जियों के प्रयोग से मुक्ति मिल सकती है । आज कर घरों के आगे पीछे उपलब्ध भूमि पर प्रायः परिवारजनों की आवश्यकता के अनुसार सब्जियाँ उगाये जाते है इससे जहाँ एक और समय का सदुपयोग होता है, और कार्य करने की क्षमता बनी रहती हैं वही घरेलू खर्च में भी कमी आती है ।

फसल चक :-

(क) मुख्य प्लाट :-

1. पत्ता गोभी (अक्टूबर-फ़रवरी), लोबिया (मार्च-जून), मैथी (जुलाई-सितम्बर)

2. भिण्डी (सितम्बर-दिसम्बर), बांकला (जनवरी-मार्च), टमाटर (अप्रैल-जुलाई)
3. गाजर (नवम्बर-जनवरी), मिर्च (फ़रवरी-जून), ककड़ी (जुलाई-अक्टूबर)
4. आलू (अगस्त-नवम्बर), करेला (दिसम्बर-अप्रैल), चौलाई (मई-जुलाई)
5. मटर (अगस्त-अक्टूबर), टमाटर (नवम्बर-मार्च), भिण्डी (अप्रैल-जुलाई)
6. शिमला मिर्च (जून-अक्टूबर), प्याज (नवम्बर-मार्च), ककड़ी (अप्रैल-मई)
7. गाजर (अगस्त-अक्टूबर), बांकला (नवम्बर-जनवरी), मुली (फरवरी-मार्च), ककड़ी (अप्रैल-जुलाई)
8. शिमला मिर्च (सितम्बर-दिसम्बर), ग्वार की फली (जनवरी-अप्रैल), कद्दू (मई-अगस्त)
9. चुकन्दर (सितम्बर-नवम्बर), पत्ता गोभी (दिसम्बर-मार्च), ग्वार की फली (अप्रैल-जुलाई)
10. आलू (नवम्बर-फ़रवरी), चौलाई (मार्च-मई), लोबिया (जून-अगस्त), मूली (सितम्बर-अक्टूबर)
11. मटर (अक्टूबर-दिसम्बर), टमाटर (जनवरी-अप्रैल), करेला (मई-सितम्बर)
12. पालक (अक्टूबर-दिसम्बर), भिण्डी (जनवरी-अप्रैल), शकरकन्द (मई-सितम्बर)
13. मेथी (नवम्बर-फ़रवरी), बांकला (मार्च-जून), प्याज (जुलाई-अगस्त)
14. पालक (अक्टूबर-जनवरी), ककड़ी (फरवरी-अप्रैल), सेम (मई-सितम्बर)
15. लहसुन (अक्टूबर-फरवरी), शलजम (मार्च-मई), फूल गोभी (जून-सितम्बर)
16. शलजम (नवम्बर-फरवरी), सेम (मार्च-जून), लहसुन (जुलाई-अक्टूबर)
17. गांठ गोभी (अक्टूबर-जनवरी), गाजर (फरवरी-अप्रैल), चौलाई (मई-सितम्बर)
18. फूल गोभी (अगस्त-नवम्बर), आलू (दिसम्बर-मार्च)
19. भिण्डी (नवम्बर-फरवरी), पालक (मार्च-जून), गांठ गोभी (जुलाई-अक्टूबर)

20. टमाटर (सितम्बर-दिसम्बर), शलजम (जनवरी-मार्च), पत्ता गोभी (अप्रैल-अगस्त)

21. पत्ता गोभी (सितम्बर-दिसम्बर), बैंगन (जनवरी-मई), ककड़ी (जून-अगस्त)

22. पालक (नवम्बर-जनवरी), ग्वार की फली (फरवरी-मई), बैंगन (जून-अक्टूबर)

23. पत्ता गोभी (अक्टूबर-जनवरी), शिमला मिर्च (फरवरी-मई), लोबिया (जून-सितम्बर)

24. फूल गोभी (सितम्बर-दिसम्बर), मिर्च (जनवरी-अप्रैल), जैकबीन (मई-अगस्त)

(ख) मेड पर लगाने वाली सब्जियां

1. गांठ गोभी (अक्टूबर-जनवरी), गाजर (नवम्बर-जनवरी), मूली (फरवरी-मार्च)
2. शलजम (अगस्त-सितम्बर), चुकन्दर (अक्टूबर-दिसम्बर), गांठ गोभी (अनवरी-मार्च), मूली (मार्च-अप्रैल)

(ग) तार पर चढाने वाली सब्जियां

1. करेला (दिसम्बर-मार्च), ककड़ी (अप्रैल-जून), तोरी (जुलाई-अक्टूबर)
2. कद्दू (नवम्बर-फरवरी), तोरई (मार्च-जून), करेला (जुलाई-अक्टूबर)
3. ककड़ी (दिसम्बर-मार्च), करेला (अप्रैल-जुलाई), सेम (अगस्त-दिसम्बर)

(घ) उत्तर की ओर लगाने वाले फल के वृक्ष

1.आंवला 2. अमरुद 3. आम 4. नींबू 5. मीठा नींबू 6. सहजन

(ड.) पूर्व की ओर लगाने वाले पौधे

1. अंगूर 2. पपीता 3. केला 4. मीठा नीम

आदर्श गृहवाटिका के लिए उचित फसल चक्र अपनाकर ही हम वर्ष भर प्रत्येक क्यारी का पूरा उपयोग कर सकते है, जिसे हमें नियमित रूप से वर्ष भर सब्जी एवं

फल मिल सकें। मौसम में अधिक उत्पादन के समय घरेलु तौर पर अनेक उत्पाद बनाये जा सकते है। फसलों का चुनाव जलवायु एवं व्यक्तिगत पसंद के अनुसार किया जा सकता है।

गृहवाटिका – मासिक कार्यक्रम

जनवरी से दिसम्बर तक गृहवाटिका में लगाये जाने वाले सब्जियों

जनवरी – इस महीने खरबूजा, तरबूज, मूली का रोपण किया जा सकता है। भिण्डी और गर्मियों में होने वाली सब्जियां जैसे ककड़ी, घीया व सीताफल (कद्दू) की पौध, जिन्हें पॉलिथीन में बोया गया था, उन्हें अव ठीक ढंग से लगाया जा सकता है। यदि इनके बीजों को आपने अब तक नहीं उगाया, तो उसकी तैयारी भी इस महीने में की जा सकती हैं। दिन के समय पॉलिथीन के थैलों में उगाये इन बीजों को धूप में बीजों को धूप में रखें, पर रात के समय पॉलिथीन से ढक कर ओस बचायें। अंगूर (पूसा सीडलैस, पूसा ब्यूटी) की बेल लगाने के लिए यही महीना उपयुक्त हैं।

फरवरी – गर्मियों की सब्जियों, जिन्हें पिछले महीने पॉलिथीन की थैलियों में उगाया गया था, उसे निकाल कर मिटटी के चार इंच वाले गमलों में लगा दें। टमाटर, बैंगन, मिर्च और फलियां, टिंडी, भिण्डी, पालक को इस महीने बोया जा सकता हैं।

मार्च – करैला, घीया, लौकी, फलीदार सब्जी, खीर, फरासबीन, भिण्डी, मूली, सीताफल और तरबूज आदि के बीज उगायें। इस महीने मूंग की दाल उगाई जा सकती हैं। इससे मिटटी भी उपजाऊ हो जाती हैं।

अप्रैल – क्यारियों को साफ़ करके अगली ऋतु में होने वाली होने वाली सब्जियों की बुआई के लिए जमीन तैयार करें।

मई – बैंगन, फूलगोभी और मिर्च के बीच लगाने का सही समय हैं। जितने सूखे पौधे या पालतू छोटे पौधे क्यारियों में उगे हैं, उन्हें निकाल फेंके। पिछले लगाये पौधों में आवश्यकतानुसार खाद आदि डालें, जिससे कि वे गर्मी के मौसम में एकदम तैयार हो जायें।

जून – करैला, घीया, बैंगन, फूलगोभी, शिमला मिर्च, फलदार सब्जियों, सेम भिण्डी, सीताफल आदि उगाये जा सकते हैं। भुट्टा भी अभी उगा सकते हैं।

जुलाई – शंकरकंदी भी इसी महीने में बोई जाती हैं। ये अंकुरित बीजों से या कटिंग से उगाई जाती हैं।

अगस्त – गाजर, गोभी, पालक, मूली आदि बोया जा सकता हैं। गोभी के पौधों को बड़े गमलों में या खुली जगह में लगाया जा सकता हैं। सेलेरी भी जुलाई-अगस्त में लगानी चाहिए। सेलेरी सब लोग इसे नहीं खाते पर इसमें बहुत पौष्टिक तत्व होते हैं।

सितम्बर – बन्दगोभी, मेथी, फरासबीन, मटर, आली, मूली, पालक, पार्सले के बीज आदि बोये जा सकते हैं। लीक और सेलेरी भी सितम्बर व अक्टूबर में बोये जाते हैं।

अक्टूबर – चुकन्दर, बैंगन, बन्दगोभी, गाजर, सरसों, मूली, शलजम और आलू इस महीने में लगाये जा सकते हैं।

नवम्बर - चुकन्दर, बैंगन, बन्दगोभी, गाजर, सरसों, मूली, शलजम और आलू इस महीने में लगाये जा सकते हैं।

दिसम्बर – टमाटर की पौध और प्याज बो सकते हैं

गृह वाटिका मासिक कार्यक्रम से हमेशा स्वस्थ, पोषक एवं ताजे फल-सब्जियों की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है चुकन्दर, बैंगन, बन्दगोभी, गाजर, सरसों, मूली, शलजम और आलू इस महीने में लगाये जा सकते हैं।

कृषि मशीनरी : किसानों के लिए वरदान

डॉ. आर. पी. सिंह (फसल सुरक्षा)

संरक्षण कृषि फसल उत्पादकता पर बिना किसी विपरीत प्रभाव डाले, प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि, जल एवं पर्यावरण को संरक्षित रखती है। संरक्षण खेती द्वारा मृदा कटाव एवं जल हानि में कमी होती है । क्रीडा सतह पर मिटटी के कम पलवार से खरपतवारों का अंकुरण कम होता है, मृदा में सूक्ष्म जीव सुरक्षित रहते हैं, कार्बनिक पदार्थ का अधिक निर्माण होता है, रासायनिक उर्वरकों की कम आवश्यकता होती है तथा प्रति हेक्टेयर उपज में वृद्धि होने से किसान की आय बढती है । संरक्षण कृषि में मृदा सतह के ऊपर कम से कम 30 प्रतिशत अवशेष होना आवश्यक है । विश्व में लगभग 125 मिलियन हेक्टेयर से ज्यादा जमीन पर संरक्षण खेती की जा रही है । संरक्षण कृषि में आवश्यक उपयोगी मशीन का संक्षिप्त विवरण इस लेख में दिया गया है ।

संरक्षण खेती का उद्देश्य :

संरक्षण खेती का उददेश्य समेकित प्रणाली द्वारा मृदा, जल, एवं जैविक संसाधनों के संयुक्त साधनों तथा प्राकृतिक संसाधनों की प्रयोग, क्षमताओं को सुरक्षित प्रोत्साहन एवं निर्माण करना है । इस विधि का मुख्य उददेश्य यह है कि खेत की मिटटी को न्यूनतम हिलाया जाए, उसकी जुताई न के बराबर की जाए, भारी मशीनों का काम से कम प्रयोग किया जाए व मृदा सतह को हर समय फसल अवशेषों या दूसरे किसी वनस्पतिक आवरणों से ढ़ककर रखा जाए। हरी खाद या मृदा को ढ़कने वाली अन्य फसलों को फसल चक्र में अपनाया जाए । ऐसा करने से बहुत सारे लाभ पाये गये है, जिनमें फसलों की पैदावार बढ़ाने के साथ-साथ संसाधनों जैसे जल, जमीन, पोषक तत्व, फसल उत्पाद और वातावरण अच्छी प्रगति के लिए बहुत जरूरी है ।

संरक्षण कृषि की आवश्यकता – वर्तमान परिदृश्य में संरक्षण कृषि आवश्यक हो गयी है जिसके निम्न कारण हैं –

1. खेती में भारी कृषि यंत्रों एवं मशीनों के अधिक प्रयोग से भूमि की निचली सतह का कठोर हो जाना।
2. खेती में अत्यधिक जुताई से मिटटी की संरचना में बदलाव एवं मृदा कार्बनिक पदार्थो की मात्रा में कमी।
3. भूमि में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी।
4. फसल अवशेषों को जलाने से ग्लोबल वार्मिंग का तेजी से बढ़ाना।
5. मृदा के लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में कमी तथा उनकी क्रियाशीलता पर विपरीत प्रभाव।
6. खेती में खतपतवारों की संख्या में लगातार वृद्धि होना।
7. खेती में प्रति इकाई उत्पादन लागत में वृद्धि।
8. असन्तुलित रसायनों एवं उर्वरक के प्रयोग के कारण बढ़ता मृदा एवं जल प्रदूषण।
9. अधिक जल की आवश्यकता।
10. मशीनों के अधिक प्रयोग से बिगड़ती मृदा समतलता।

संरक्षण कृषि उपयोगी यंत्र :

1. फसल उगाने हेतु मृदा में उचित स्थिति बनाने के लिए बुवाई पूर्व की सभी यांत्रिक क्रियाओं को टिलेज कहते हैं। भूमि की सतह को प्राकृतिक रूप में बनाये रखकर व पहली फसल के अवशेषों को भूमि की सतह पर छोड़ते हुए अगली फसल के इए खेत तैयार करना, संरक्षण टिलेज कहलाता है। संरक्षण टिलेज जुताई की एक ऐसी विधि है जिसमे खेतों को कम से कम इस तरह से जोता जाता है कि पिछली फसलों के अवशेष कम से कम एक तिहाई मृदा क्षेत्र को ढक लें। इस विधि से ऊर्जा की बचत होती है, मृदा अपर्दन भी कम होता है

और मृदा का उपजाऊपन भी बढ़ता है।

2. **नवीन डिब्लर –** इस उपकरण से खेत की बिना जुताई के बीजो की बुवाई की जा सकती है। इसका उपयोग महिलाये भी कर सकती है। यह कतार में बुवाई के लिए उपयोगी है। इससे बुआई का कार्य करने में श्रम कम लगता है एवं कार्य क्षमता 0.028 हेक्टेयर प्रति घंटा है।
3. **चक्रीय रोप छिद्रक –** यह एक हस्तचलित धकेलकर चलाया जाने वाला उपकरण है। जिससे अच्छी तरह तेयार किये गये खेत में बड़े तथा मध्यम आकार के बीजों की बुवाई कतारों में नियमित दूरी पर की जाती है। यह मक्का, सोयाबीन, ज्वार, अरहर, चने के बीजो की बुआई के लिए उपयुक्त है। इस मशीन की कार्य क्षमता 0.046 हेक्टेयर प्रति घंटा है।
4. **पशु चालित तीन कतारी बीज बुआई यंत्र –** यह गेहूँ, चना, ज्वार, सोयाबीन, मसूर, मूंग, अरहर, सूर्यमुखी आदि की बुआई के लिए उपयुक्त है। यह बीज को वांछित गहराई तक डालता है। इसमें देशी हल से बुवाई का लगभग तीन गुना कार्य किया जा सकता है। कार्य क्षमता 0.10 से 0.28 हेक्टेयर प्रति घंटा है।
5. **पशु चालित अवनत प्लेट प्लान्टर –** यह एक तीन कतारी उपकरण है। जिसमे मूंगफली, मक्का,अरहर,ज्वार तथा अन्य तिलहनो तथा दलहनी बीजों की झुकी प्लेट युक्त मापक प्रणाली से कतार में उपयुक्त दूरी पर की जाती है। यह यंत्र लगभग 50-70 प्रतिशत बीज की बचत करता है। कार्यक्षमता 0.2 से 0.3 हेक्टेयर प्रति घंटा है।
6. **जीरो टिलेज –** खेत की बिना जुताई किये मिट्टी में बीज की सीधे बुआई करना जीरो टिलेज कहलाता है। इस तकनीक द्वारा गेहूँ, धान, मक्का, मसूर, चना की बुआई की जा सकती है। इस

तकनीक में बुवाई के बाद फसल अवशेषों को मृदा सतह पर फैला दिया जाता है, जो सड़-गल कर ह्यूमस बन जाते है, और खाद का काम करते है जिससे मृदा उर्वरता में वृद्धि होती है।

7. **हैप्पी-टर्बो सीडर –** हैप्पी-टर्बो बुवाई मशीन ट्रेक्टर के पी टी ओ शाफ्ट द्वारा चालित होते है, जोकि लगभग 1500 आर पी एम पर चलाया जाता है तथा पीछे फरो-ओपनेर से बुवाई की जाती है। इस मशीन से उपयोगी प्राकृतिक संसाधनों (ऊर्जा, लेबर, डीजल इत्यादि) की बचत होती है, तथा एक हेक्टेयर बुवाई करने में 5-6 घंटे समय की आवश्यकता पड़ती है।

8. **स्ट्रिप टिल ड्रिल –** यह मशीन बिना खेत तैयार किये धान के बाद गेहूँ के लिए प्रयोग किया जाता है। यह फसल की समय पर बुवाई की वजह से पैदावार बढ़ाने में मदद करता है। यह मशीन एक पतली स्ट्रिप 6-10 सेमी. खेत तैयार में जुताई करके सीधे बुवाई करता है।
9. **अवनत प्लेट प्लान्टर –** मूंगफली, अरहर, सोयाबीन, मक्का, आदि की बुआई के लिए छः कतारी ट्रेक्टर चालित अवनत प्लेट प्लान्टर उपयुक्त है। इस यंत्र में कतारों के बीच की दूरी को नियंत्रित किया जा सकता है तथा विहिन्न बीजों की विभिन्न कतारों में बुआई भी संभव है। मशीन की प्रभावी कार्यक्षमता 0.45 से 0.65 हेक्टेयर प्रति घंटा है।
10. **मल्चर कम सीडर –** यह यंत्र खेत में फसल अवशेष को काटता है एवं कटे हुए फसल अवशेष के बीच बुवाई करता है। यह बीज को निश्चित गहराई तक बोता है, इसमें लागत कम लगती है। इस मशीन की कार्य क्षमता 0.45 से 0.50 हेक्टेयर प्रति घंटा है।

11.प्री-इमरजेंस हर्वीसाइड ऐप्लीकेटर एवं अवनत प्लेट प्लाटर – इससे फसल कतारों के पास उगने वाले खरपतवार को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है जो यांत्रिक निराई द्वारा संभव नही है । इस मशीन द्वारा एक साथ खरपतवारों पर दवा का छिड़काव एवं बीज की बुवाई की जा सकती है । मशीन की कार्य क्षमता 0.45 से 0.50 हेक्टेयर प्रति घंटा है।

संरक्षण खेती के लाभ :

1. पंरपरागत खेती में जुताई द्वारा फसल अवशेष मृदा में मिला दिए जाते हैं। संरक्षण खेती में क्रीडा सतह पर फसल अवशेषों की पार्ट होने के कारण मृदा कणों को बांधे रखने की क्षमता बढ़ जाती है, जिससे जल तथा वायु कटाव की तीव्रता कम हो जाती है।
2. संरक्षण खेती में मृदा में कम से कम यांत्रिक छेड़छाड़ करने, मृदा सतह को जैविक पलवार से ढके रहने तथा फसल चक्र अपनाने से मृदा की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणवत्ता में लगातार वृद्धि होती है।
3. संरक्षण खेती अपनाने से मृदा संरचना, मृदा कणों के आकार व टिकाऊपन तथा वायुसंचार से सुधार से पौधों की जड़ों का अच्छा विकास होता है।
4. संरक्षण खेती से मृदा क्षारीयता तथा लवणता की समस्या भी कम कर होती है।
5. संरक्षण खेती में मृदा सतह पर फसल अवशेषों की जैविक पलवार के कारण वर्षा जल का मृदा में रिसाव बढ़ता है तथा भू-जल का वाष्पीकरण कम होता है।
6. फसल अवशेषों को खेत से बाहर न ले जाकर या जलाया न जाकर मृदा सतह पर ही रखने के कारण धीरे-धीरे उनके अपघटन से पोषक तत्व मृदा में मिलते रहते है।
7. संरक्षण खेती में फसलों की सीधी बुवाई करने से श्रम, ईंधन व समय की

बचत होती है तथा यंत्रों की कम आवश्यकता होती है।

8. संरक्षण खेती में फसल चक्र अपनाने से कीटों व् बीमारियों का प्रकोप कम होता है।
9. खेत के चारों तरफ मेडबंधी करें, जिससे कि वर्षा जल के साथ खरपतवारों के बीज खेत में न आएं।
10. शाकनाशियों का उचित प्रयोग, जैविक खरपतवार नियन्त्रण की विधियों का प्रयोग आदि से धीरे-धीरे खरपतवारों का प्रकोप कम किया जा सकता है।
11. संरक्षण खेती में मृदा गुणवत्ता के बढ़ने, नमी के अधिक समय तक उपलब्ध रहने, सूखे का प्रभाव कम होने, समय पर बुवाई होने आदि से उपज में वृद्धि होने तथा उत्पादन लागत में कमी आने से किसानों के लाभ में वृद्धि होती है।

सब्जियों के तुड़ाई उपरान्त भंडारण एवं गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले तुड़ाई पूर्व कारक

डॉ. अजित कुमार श्रीवास्तव (उद्यान)

सब्जियाँ हमारे आहार का अभिन्न हिस्सा हैं। सब्जियों की खेती से हमें कम समय में अधिक उपज, उच्च आय, पोषण सुरक्षा और अधिक रोजगार सृजन करने में मदद मिलती है। सब्जियों के उत्पादन में तेज गति से वृद्धि हो रही है और वर्ष 2017 में भारत में बागवानी फसलों का उत्पादन 295.16 मिलियन टन हुआ जो एक कीर्तिमान था क्योकिं उसी वर्ष के खाद्यान्न उत्पादन 273.38 मिलियन टन से भी ज्यादा था। वर्तमान में लगभग 10 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र से 180 मिलियन टन सब्जियों का उत्पादन हो रहा है। विविध प्रकार के फल एवं सब्जियों के उत्पादन में हम चीन के बाद दुसरे पायदान पर हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि उत्पादन के बाद ताज़ी सब्जियों की गुणवत्ता उपभोक्ता के सेवन करने तक बनी रहें।ताजे फल एवं सब्जियाँ बहुत अधिक नाशवान प्रकृति की होती हैं। 80 से 96 प्रतिशत तक पानी, कोमल गठन, अधिक श्वसन क्रिया की दर और परिवहन तथा भंडारण के दौरान यांत्रिक चोटों के कारण वह बहुत जल्दी नष्ट होने लगती हैं। जल के तेज क्षति से इनमें सिकुड़न दिखाई देने लगती है। समान्यतः यह पाया गया है कि 3-10 प्रतिशत तक भार में कमी आने से सब्जियाँ मुरझाने लगती हैं जिससे इनका स्वजीवन और गुणवत्ता दोनों प्रभावित होते हैं। इससे उत्पाद की बिक्री और दाम पर भी असर पड़ता है। तुड़ाई उपरान्त सब्जियों की गुणवत्ता और भंडारण अवधि कई सारे तुड़ाई पूर्व कारकों पर निर्भर करती है। इनमें प्रमुख हैं अनुवांशिकी, बगीचे की जगह, धूप की तीव्रता और तापमान, सिंचाई, कलम, उर्वरक, पौधे वृद्धि नियामक, तुड़ाई के तरीके और प्रबंधन, फसल की तुड़ाई के समय परिपक्वता, तुड़ाई का समय, तुड़ाई उपरान्त परिवहन के पूर्व व्यतीत समय, कीट और रोगों से बचाव हेतु प्रशोधन इत्यादि। अनुवांशिकी और वातावरण इन गुणों को प्रभावित करते हैं। वातावरण कारक जैसे तापमान, नमी, धूप, हवा, इत्यादि बागवानी फसलों के

गुणवत्ता को ख़ास रूप से प्रभावित करती हैं। कलम बांधने के लिए वांछित जरूरतों के हिसाब से अंकुर और मूल का चयन तथा इसके अलावा सब्जी बगीचे की जगह, सिंचाई की व्यवस्था और उर्वरक भी सब्जी फसलों की गुणवत्ता और स्वजीवन को प्रभावित करते हैं।

विभिन्न आंकड़ों के विश्लेषण से यह अनुमान है कि फलों एवं सब्जियों के कुल उत्पादन का लगभग 30-40 प्रतिशत हिस्सा तुड़ाई उपरान्त उचित प्रबंधन की कमी से आपूर्ति श्रृंखला में किसी न किसी बिंदु पर क्षतिग्रस्त हो जाता है। इस नुक्सान से बचाव के मुख्य दो उपाय हैं एक कि हम स्वजीवन अवधि को उचित प्रबंधन कर ज्यादा से ज्यादा दिनों तक बढ़ाए और दुसरा प्रसंस्करण। यह लेख तुड़ाई पूर्व कारकों का सब्जियों की गुणवत्ता और संभावित भंडारण जीवन पर प्रभाव के विषय में विभिन्न शोधों के परिणाम और विचारधाराओं को आपके समक्ष प्रस्तुत करता है।

गुणवत्ता के दो पहलू आंतरिक गुणवत्ता और बाहरी गुणवत्ता होती हैं। आज के समय में सभी उपभोक्ता पहले की तूलना में आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की गुणवत्ता के लिए सतर्क हैं। जिस प्रकार कल का आकार, सुडौलता, रंग, और किसी भी दाग-धब्बे से मुक्ति उसकी बाह्य गुणों को बताती है, उसी तरह से सब्जियों के भीतर के यौगिक जैसे विटामिन, इंटिआक्सिडेंट, फिनोलिक्स, और स्वास्थय के लिए हानिकारक यौगिकों की उपस्थिति और मात्रा सब्जियों की खाद्य सुरक्षा और पोषण के परिचायक होती हैं। जहां बाह्य गुण सब्जी या कोई भी अन्य बागवानी उत्पाद का दाम निर्धारित करती हैं, वहीं आंतरिक गुण उसकी सुरक्षा और पोषण की महत्वपूर्ण संकेतक होती हैं। किसी भी उत्पाद का वांछित अंत उपयोग और उसके लिए उसकी उपयुक्तता ही गुणवत्ता के स्तर की सही कसौटी होती है। बाहरी विशेषताओं जैसे आकार, आकृति, रंग, ठोस गठन, दोष और क्षय की अनुपस्थिति उपभोक्ता द्वारा स्वीकार्यता और बाजार में कीमत को निर्धारित करने में प्रमुख कारक हैं जबकि कीटनाशक अवशेषों के स्तर और पोषण संबंधी तत्व दिखाई नहीं देते पर बहुत ही महत्वपूर्ण गुणवत्ता संकेतक हैं। हालांकि, अब उपभोक्ता खाद्य पदार्थों के स्वास्थ्य

लाभों के लिए जागरूक हैं और इसके परिणामस्वरूप उच्च विटामिन, खनिजों और बायोएक्टिव यौगिकों से भरपूर फलों एवं सब्जियों की मांग बढ़ गई है । फलों, सब्जियों या प्रसंस्कृत उत्पादों की गुणवत्ता के अनुसार श्रेणीकरण करने के लिए मानक संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) और विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) के कोडेक्स एल्मेंटेरियस कमीशन द्वारा बनाए गए हैं । इससे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानकों में समानता रहती है, व्यापार करने में सुविधा और निर्यात से उत्पन्न राजस्व को बढ़ावा मिलता है ।

गोभी वर्गीय (ब्रासिका) सब्जियों में ग्लूकोसीनोलेट्स, गाजर, काली मिर्च में करोटेनोइड्स, टमाटर में लाइकोपीन, प्याज में पालीफेनाल और बीन सब्जियों में ऐसे यौगिक हैं जो प्राकृतिक रूप से कई रोगों से प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं । तुड़ाई पूर्व कारक जैसे आनुवांशिका रूप, बगीचे की जगह का चयन, सूर्य की रोशनी, तापमान, सिंचाई, उर्वरक प्रबंधन, कलम और मूल-वृंद की युक्ति, पौधे विकास नियामक, परिपक्वता और तुड़ाई की तकनीक सभी तुड़ाई उपरान्त भंडारण और गुणवत्ता पर प्रभाव डालते हैं । आगे इन्हीं कारकों को संछिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है ।

आनुवंशिकी कारक

किसी भी बागवानी फसल के उपयोग के अनुसार किस्म का उचित चयन बहुत आवश्यक है । आनुवंशिकी कारक गुणवत्ता का एक प्रमुख निर्धारक है । टमाटर, गाजर, मूली, बैंगन इत्यादि सब्जियों की कई साड़ी नई किस्में विकसित किए गये हैं जिनमें उच्च एंथोसाइनिन होते हैं, और इसी कारण से सामान्य से अधिक पौष्टिक होते हैं । विभिन्न गाजर और मूली सब्जियों की किस्मों में फिनोल, एंटिआक्सीडेंट, विटामिन और शर्करा के अलग-अलग स्तर होते हैं । बैंगनी गाजर और मूली में फायदेमंद बायोएक्टिव यौगिक होते हैं । ब्रासिका प्रजातियों में जीनोटाइप के साथ ग्लूकोसिनोलेट्स और कैरोटेनोइड, जिसमें कर्क रोग रोधी यानी एंटीकार्सीनोजेनिक गुण होते हैं, के स्तर भिन्न पाये गये हैं । पोषण रोधी तत्व जैसे आक्सलेट और नाइट्रेट

के स्तर भी विभिन्न पत्तेदार सब्जियों की किस्मों के साथ शोध में अलग अलग पाए गये हैं। अतः हमें कोई भी किस्म के बीज के चुनाव से पहले उसके गुणवत्ता के बारे में जानना चाहिए और अपनी आवश्यकता के अनुसार चयन करना चाहिए।

सब्जी बगीचे की जगह का चयन

बागवानी फसलों, विशेष तौर से सब्जियों की तुड़ाई उपरान्त गुणवत्ता और उच्च श्रेणी के प्रसंस्कृत उत्पाद बनाने के लिए बगीचे की जगह का सही चयन महत्वपूर्ण है । मृदा स्थिति, मिटटी में रोग वाले सूक्ष्म जीव, खनिज की मात्रा, खारापन, क्षारीयता इत्यादि सब्जियों के गुणवत्ता पर बहुत प्रभाव डालते है। आदर्श रूप से प्रसंकरण के लिए कारखाना और खेती की दूरी लगभग एक किलोमीटर से ज्यादा नहीं होनी चाहिए । हालांकि यह कई बार संभव नहीं हो पाता, फिर भी न्यूनतम दूरी पर प्रसंस्करण कारखाना बनाने की कोशिश करनी चाहिए । शोध में अलग जगह के बगीचों में गुणवत्ता और रोगों के प्रकट होने में बड़ी विविधता पाई गई है। हालांकि यह पाया गया है कि मृदा स्थिति कि वजह से उत्पन्न सीमित तनाव से पोषक यौगिकों में बढ़त होती है। तथापि यह भी है कि अधिक खारेपन से सब्जियों में खनिज जैसे फॉस्फोरस, पोटेशियम, मैग्नीशियम और जिंक की मात्रा कम हो जाती है। टमाटर और शिमला मिर्च में कोंपल छोर सडन और लेट्स में नोक पर जलन खारे वातावरण में कैल्सियम की कमी से बढ़ जाते हैं।

सूर्य की रोशनी और तापमान

सूरज की रोशनी और तापमान दो जलवायु कारक हैं जो सब्जियों की गुणवत्ता को गहराई से प्रभावित करते हैं । कम रोशनी की स्थिति में अविक्रेय और कम गुणवत्ता वाली बागवानी फसलों का उत्पादन होता है । कम रोशनी में, प्रकाश संश्लेषन कम होता है जो सब्जियों में कम शर्करा के संचय का कारण बनता है। यह देखा गया है कि प्रकाश की तीव्रता के कम होने से सब्जियों में विटामिन सी के स्तर में भी कमी आ जाती है। कम प्रकाश तीव्रता रंजक संश्लेषण को कम कर देती है जिससे

अनाकर्षक और असमान रंग की सब्जियों का उत्पादन होता है । प्रकाश तीव्रता कम होने से पत्तेदार सब्जियों में पोषक रोधी तत्व जैसे नाइट्रेट और ओकसलेट का संचय बढ़ जाता है । उच्च प्रकाश तीव्रता के परिणामस्वरूप भी बागवानी उत्पादन की गुणवत्ता में कमी आ जाती है। उच्च प्रकाश धूप की तीव्रता से फल एवं सब्जियाँ झुलस जाती हैं और टमाटर में फलों के ऊपरी हिस्से पर हरा रंग रह जाता है । सब्जियों के रंग पर तापमान के प्रभाव पर कई शोध किये गये है । वातावरण के कम तापमान (10 डिग्री सेल्सियम से कम) पर टमाटर के फल में लाइकोपीन संश्लेषण पूरी तरह रुक जाता है । उच्च तापमान की स्थिति की तुलना में कम तापमान में ककड़ी में कड़वे फलों की संख्या बढ़ जाती है। बहुत अधिक तापमान गुणवत्ता हानि का कारण बनता है और सब्जियों के आकार, रंग और बनावट में परिवर्तन पाया जाता है । यह प्रभाव कोशिकाओं की झिल्लियों, प्रोटीन और न्यूक्लिक एसिड के क्षय, अवरुद्ध रंजक संश्लेषण, रंजक तत्वों के हानि, और धूप से झुलसने की वजह से प्रकट होता है। इसके अलावा, बहुत अधिक या बहुत कम अवांछित तापमान में उगाई जाने वाली सब्जियों में विकार और रोग के प्रति पहले से ही प्रवृत्त हो जाती है।

जल प्रबंधन

जल प्रबंधन की महत्ता आज के समय में स्वरप्रथम आवश्यकता है, खासकर कृषि क्षेत्र में जल का अत्यधिक महत्व है । प्रसंस्करण उद्योग में भी साफ़ निर्मल जल की आवश्यकता होती है । सिंचाई जल की मात्रा और गुणवत्ता दोनों सब्जियों की बाह्य और आंतरिक गुणवत्ता और स्वजीवन पर प्रभाव डालती हैं । संचयन अवधि और सब्जियों के यौगिक और विटामिन कोशिकाओं में जल के दबाव यानी टरगर दबाव पर निर्भर करती है। टरगर दबाव बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि टरगर दबाव कम होने की स्थिति में बागवानी फसल पर सिकुड़न जल्दी दिखाई देती हैं और वे मुरझाने लगती हैं । पत्तेदार सब्जियों, खासकर पालक में कम अंतराल पर सिंचाई करने से पत्तियाँ कड़ी हो जाती हैं और गुणवत्ता प्रभावित होती है । गाजर की फसल में कम अंतराल पर अधिक सिंचाई करने पर जड़े फटने लगती हैं । अधिकतर फसलों में

तुड़ाई से एक सप्ताह पहले से सिंचाई बंद कर देने से तुड़ाई उपरान्त फसल की गुणवत्ता और भंडारण अवधि में वृद्धि देखी गई है। इससे जल की तो बचत होती ही है साथ ही तुड़ाई उपरान्त भंडारण के लिए फसल भी तैयार हो जाती है। कई अध्ययन में पाया गया है कि सिंचाई विनियमन से सब्जी फसलों के रंग और गुणवत्ता में बढ़त होती है।

कलम बांधने की तकनीक

उपयुक्त अंकुर और मूल वृन्द का संयोजन आवश्यकता के अनुसार चयन करने से उपज और गुणवत्ता बढ़ जाती है। इस तकनीक से जीवित पौधे ऊतक के दो या दो से अधिक टुकड़ों को जोड़ा जाता है जो बाद में एक हो कर बढ़ती है। कलम बांधने की तकनीक से पोषक तत्वों के स्तर में और ठोस गठन पर प्रभाव विभिन्न शोध कार्यों में पाया गया है। एक अध्ययन में पाया गया कि विटामिन सी कलम बंधे हुए तरबूज के फलों में अप्रयुक्त पौधों की तुलना में 13: अधिक थी। इसके अलावा, कलम बांधने से सब्जियों की खनिज स्तर पर भी असर पड़ता है। कुकुर्बिटा फिसीफोलिया और लेगेनरिया सिसेरिया पर गठित पौधों के फलों में विटामिन सी की मात्रा में वृद्धि देखि गई है। कलम विधि से तैयार किये गये टमाटर के फलों में फल में समान स्थितियों के बिना कलम बांधी हुई स्थिति में लाइकोपीन की मात्रा अधिक पाई गई थी।

उर्वरक और पोषण

सर्वोत्कृष्ट पोषण स्तर से अधिक या कम मात्रा में पोषक तत्वों के उपयोग से सब्जियों में कई प्रकार के क्रियात्मक विकार हो सकते है। नाइट्रोजन उर्वरक, विशेष रूप से उच्च दर पर उपयोग करने से सब्जियों में विटामिन सी में गिरावट पाई गई है। यह फूलगोभी, ब्रोकोली, आदि सहित कई सब्जियों में अध्ययन में पाया गया है। वहीं नाइट्रोजन उर्वरक का अत्यधिक उपयोग नाइट्रेट के स्तर को बढाता है जो कि एक पोषण रोधी तत्व है । नाइट्रेट की अधिकता से नवजन्मे शिशुओं में मेथएमोग्लोबिनमिया जिसको ब्लू बेबी सिंड्रोम भी कहते हैं, हो सकता है ।

शोधकर्ताओं ने यह पाया कि गाजर में कैरोटीनोइड और घुलन शर्करा, नाइट्रोजन के उपयोग से बढ़े पाए गये । हालांकि अधिकतर सब्जियों में नाइट्रोजन के अधिक उपयोग से विटामिन सी, घुलन शर्करा, गुणवत्ता और भंडारण अवधि में गिरावट पाई गई है । उर्वरक प्रबंधन का सब्जियों के विपणन, पोषण, गुणवत्ता और स्वजीवन पर गहरा असर पड़ता है । नाइट्रोजन उर्वरक के कम प्रयोग से लाइकोपीन, कैरोटीन और फिनोलिक्स जैसे जैवसक्रिय यौगिक में कई सब्जियों में बढ़त पाई गई है । पोटेशियम से सब्जियों में विटामिन सी और कैरोटीन संचय बढ़ता है, साथ ही रंग में भी सुधार आता है । ब्रोकोली फसल पर सल्फर उर्वरक के प्रयोग से फ्लैवोनोइड्स और ग्लूकोसिनोलेट्स बढ़ जाते है ।

सारणी : पोषक तत्व और गुणवत्ता पर प्रभाव

पोषक तत्व	**भूमिका**
नाइट्रोजन	अतिरिक्त मात्रा होने से रंग का विकास ठीक से नहीं हो पाता और भंडारण अवधि भी कम हो जाती है । स्वाद में कमी और रोगों और क्षय होने की संभावना बढ़ जाती है । हालांकि कमी से फलों और सब्जियों का आकार सामान्य से छोटा हो जाता है ।
फास्फोरस	सब्जियों के ठोस गठन और एसिड और शुगर बढ़ाने में सकारात्मक भूमिका पाई गई है । लेकिन इससे कम तापमान पर क्षय की समस्या बढ़ जाती है ।
पोटेशियम	रंग के विकास में और एसिड और शुगर की मात्रा बढाने में सहायक होता है ।
कैल्शियम	सब्जियों के ठोस गठन, और रोगों से प्रतिरोधक क्षमता, परिपक्वता अवधि बढ़ाने में सहायक होता है । सब्जियों की स्वजीवन अवधि को बढ़ाने में भी सकारात्मक भूमिका पाई गई है ।

पौधे वृद्धि नियामक

सब्जियों की गुणवत्ता पर लाभकारी प्रभाव के लिए पौधों को विकास नियामक से इष्टतम परिणामों के लिए उपयोग की मात्रा में समीक्षात्मक संतुलन की

आवश्यकता है। इथेफोन को फसल पर एक ही समय में परिपक्व करने के लिए टमाटर जैसे कुछ फसलों में उपयोग किया जाता है। इससे तुड़ाई करने में आसानी होती है। लेटस पत्तियों में वार्धक्य के समय जिब्बेरिलिन और साइटोकिनिन की कमी पाई गई है। शोध में यह भी देखा गया है कि सेलेरी पत्तियों पर जिब्बेरिलिन के उपचार से उनमें रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है, रोग कम आते हैं और तुड़ाई उपरान्त स्वजीवन अवधि बढ़ जाती है।

तुड़ाई के समय फसल की परिपक्वता

सब्जियों के विकास और परिपक्वता के दौरान विटामिन सी, कैरोटीनोइड, फिनोलिक्स, फिनोलिक्स और एंटीआक्सीडेंट बदलते रहते हैं। कई अध्ययनों में पाया गया है कि अपरिपक्व सब्जियों में इनके स्तर ज्यादा होते हैं जो फसल पकने के साथ कम होने लगते है। विभिन्न रंगों कि शिमला मरीच जैसे हरा, लाल और पिला में विटामिन सी के स्तर में विकास के दौरान बढ़त, गिरावट और कई बार समानता पाई गई है। हालांकि लाल और पीले शिमला मिर्च में कैरोटेनोइड और अंथोसाइनिन पूर्ण परिपक्वता के समय ही सबसे अधिक पाए गए है। सब्जियों की परिपक्वता की अवस्था के अनुसार, फिनोलिक्स और एंटीआक्सिडेंट क्षमता हर सब्जी फसल में बिण होती है। सब्जियों की परिपक्वता की अवस्था के अनुसार वः चोट, या क्षति के प्रति कम या ज्यादा संवेदनशील हो जाते है। एक शोध कार्य में देखा गया कि लाल शिमला मरीच में हरे शिमला मरीच की अपेक्षा 30 प्रतिशत तक अधिक विटामिन सी पाई जाती है। टमाटर के फलों में यह पाया गया कि जो फल हरी अवस्था में तोड़ लिए गए उनमें पके हुए लाल टमाटरों के अपेक्षाकृत विटामिन सी लगभग 30 प्रतिशत तक कम थी। लाइकोपिन की मात्रा में हरे टमाटरों के मुकाबले लाल टमाटरों में लगभग 500 गुना तक बढ़त पाई गई है।

तुड़ाई का समय, तरीके और प्रबंधन

तुड़ाई का समय फसल की "अंदरूनी तापमान" और श्वसन क्रिया को नियंत्रित

करती है। दोपहर की कड़ी धूप में तुड़ाई की गई फसल का तापमान अधिक होता है जिससे उनकी चयपचय की गति भी तेज होती है। इससे उनमें क्षति तेजी से होती है और वह जल्दी खराब होती हैं। इससे सब्जियों की तुड़ाई उपरान्त परिपक्वता में समानता, चोट के कारण होने वाले क्षय और गुणवत्ता का निर्धारण होता है। चोट लगने के प्रति संवेदनशीलता और चोटिल होने की तीव्रता तुड़ाई की संचालन विधि (हाथ से या यांत्रिक विधि) और प्रबंधन से प्रभावित होती है। यांत्रिक चोटें जैसे कि सतह पर घिस जाने या घाव लग जाने के परिणामस्वरूप विटामिन सी और पानी के नुक्सान की दर बढ़ जाती है, साथ ही रोगों से क्षय में भी वृद्धि होती है। तुड़ाई हाथ या मशीन जिससे भी की जाए, सर्वदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि फसल को कम से कम यांत्रिक चोटें लगें।

तुड़ाई उपरान्त ताजे फल एवं सब्जियों की गुणवत्ता को बनाए रखना एक जटिल समस्या है, जोकि कई सारीतुड़ाई पूर्व कारकों के साथ साथ तुड़ाई उपरान्त कारकों पर निर्भर करती है। उपयोग के अनुसार गुणवत्ता पाने के लिए फसल के विकास के समय से सभी कारकों पर ध्यान देना चाहिए। तुड़ाई पूर्व कारकों की आपस में परस्पर क्रिया, सब्जियों की गुणवत्ता और संभावित भंडारण जीवन पर गहरा प्रभाव डालती है। विकास के दौरान प्रबंधन ठीक तरह से नहीं की गई सब्जियाँ विकार, रोग और क्षय के लिए पूर्व से ही प्रवृत हो जाती है। इसके अलावा, बहुत अधिक या बहुत कम अवांछित तापमान में उगाई जाने वाली सब्जियों भी विकार और रोग के प्रति पहले से ही प्रवृत्त हो जाती है। पोषण की दृष्टि से आनुवंशिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। तुड़ाई पूर्व कारकों की विभिन्न सब्जियों के अनुसार सबसे अनुकूल प्रबंधन विधि से अधिकतम तुड़ाई उपरान्त गुणवत्ता और स्वजीवन अवधि पाई जा सकती है।

फसलो में पोषक तत्वों की महत्ता एवं कमी के लक्षण

संदीप प्रकाश उपाध्याय (मृदा विज्ञान)

जिस तरह से हर व्यक्ति को पोषक तत्वों की जरूरत होती है, उसी तरह से पौधों को भी अपनी वृद्धि, प्रजनन, तथा विभिन्न जैविक क्रियाओं के लिए कुछ पोषक तत्वों की जरूरत होती है। इन पोषक तत्वों के न मिल पाने से पौधों की वृद्धि रूक जाती है यदि ये पोषक तत्व एक निश्चित समय तक न मिलें तो पौधा सूख जाता है। वैज्ञानिक परीक्षणो के आधार पर 17 तत्वों को पौधो के लिए जरूरी बताया गया है, जिनके बिना पौधे की वृद्धि-विकास तथा प्रजनन आदि क्रियाएं सम्भव नहीं हैं। इनमें से मुख्य तत्व कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश है। नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश को पौधे अधिक मात्रा में लेते हैं, इन्हें खाद-उर्वरक के रूप में देना जरूरी है। इसके अलावा कैल्सियम, मैग्नीशियम और सल्फर की आवश्यकता कम होती है । इन्हें गौण पोषक तत्व के रूप मे जाना जाता है इसके अलावा लोहा, तांबा, जस्ता, मैंग्नीज, बोरान, मालिब्डेनम, क्लोरीन व निकिल की पौधो को कम मात्रा में जरूरत होती है।

1) नत्रजन के प्रमुख कार्य- नाइट्रोजन से प्रोटीन बनती है जो जीव द्रव्य का अभिन्न अंग है तथा पर्ण हरित के निर्माण में भी भाग लेती है। नाइट्रोजन का पौधों की वृद्धि एवं विकास में योगदान इस तरह से है। यह पौधों को गहरा हरा रंग प्रदान करता है। वानस्पतिक वृद्धि को बढ़ावा मिलता है। अनाज तथा चारे वाली फसलों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ाता है। यह दानो के बनने में मदद करता है।

नत्रजन-कमी के लक्षण - पौधों मे प्रोटीन की कमी होना व हल्के रंग का दिखाई पड़ना। निचली पत्तियाँ झड़ने लगती है, जिसे क्लोरोसिस कहते हैं। पौधे की बढ़वार का रूकना, कल्ले कम बनना, फूलों का कम आना। फल वाले वृक्षों का गिरना। पौधों का बौना दिखाई पड़ना। फसल का जल्दी पक जाना ।

2) फॉस्फोरस के कार्य- फॉस्फोरस की उपस्थिति में कोशा विभाजन जल्द होता है।

यह न्यूक्लिक अम्ल, फास्फोलिपिड्स व फाइटीन के निर्माण में सहायक है। प्रकाश संश्लेषण में सहायक है। यह कोशा की झिल्ली, क्लोरोप्लास्ट तथा माइटोकान्ड्रिया का मुख्य अवयव है। फास्फोरस मिलने से पौधों में बीज स्वस्थ पैदा होता है तथा बीजों का भार बढ़ना, पौधों में रोग व कीटरोधकता बढ़ती है। फास्फोरस के प्रयोग से जड़ें तेजी से विकसित तथा मजबूत होती हैं। पौधों में खड़े रहने की क्षमत बढ़ती है। इससे फल जल्दी आते हैं, फल जल्दीबनते है व दाने जल्दी पकते हैं। यह नत्रजन के उपयोग में सहायक है तथा फलीदार पौधों में इसकी उपस्थिति से जड़ों की ग्रंथियों का विकास अच्छा होता है।

फॉस्फोरस-कमी के लक्षण—पौधे छोटे रह जाते हैं, पत्तियों का रंग हल्का बैगनी या भूरा हो जाता है। फास्फोरस गतिशील होने के कारण पहले ये लक्षण पुरानी (निचली) पत्तियों पर दिखते हैं। दाल वाली फसलों में पत्तियां नीले हरे रंग की हो जाती हैं। पौधो की जड़ों की वृद्धि व विकास बहुत कम होता है कभी-कभी जड़े सूख भी जाती हैं। अधिक कमी में तने का गहरा पीला पड़ना, फल व बीज का निर्माण सही न होना। इसकी कमी से आलू की पत्तियां प्याले के आकार की, दलहनी फसलों की पत्तियाँ नीले रंग की तथा चौड़ी पत्ती वाले पौधे में पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है।

3) पोटैशियम के कार्य- जड़ों को मजबूत बनाता है एवं सूखने से बचाता है। फसल में कीट व रोग प्रतिरोधकता बढ़ाता है। पौधे को गिरने से बचाता है। स्टार्च व शक्कर के संचरण में मदद करता है। पौधों में प्रोटीन के निर्माण में सहायक है। अनाज के दानों में चमक पैदा करता है। फसलो की गुणवत्ता में वृद्धि करता है। आलू व अन्य सब्जियों के स्वाद में वृद्धि करता है। सब्जियों के पकने के गुण को सुधारता है। मृदा में नत्रजन के कुप्रभाव को दूर करता है।

पोटैशियम-कमी के लक्षण - पत्तियाँ भूरी व धब्बेदार हो जाती हैं तथा समय से पहले गिर जाती हैं। पत्तियों के किनारे व सिरे झुलसे दिखाई पड़ते हैं। इसी कमी से मक्का के भुट्टे छोटे, नुकीले तथा किनारोंपर दाने कम पड़ते हैं। आलू में कन्द छोटे तथा जड़ों

काऔर विकास कम हो जाता है पौधों में प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया कम तथा श्वसन की क्रिया अधिक होती है।

4) कैल्सियम के कार्य- यह गुणसूत्र का संरचनात्मक अवयव है। दलहनी फसलों में प्रोटीन निर्माण के लिए आवश्यक है। यह तत्व तम्बाकू, आलू व मूँगफली के लिए अधिक लाभकारी है। यह पौधों में कार्बोहाइड्रेट संचालन में सहायक है। **कैल्सियम-कमी के लक्षण -** नई पत्तियों के किनारों का मुड़ व सिकुड़ जाना। अग्रिम कलिका का सूख जाना। जड़ों का विकास कम तथा जड़ों पर ग्रन्थियों की संख्या में काफी कमी होना। फल व कलियों का अपरिपक्व दशा में मुरझाना।

5) मैग्नीशियम के कार्य- - क्रोमोसोम, पोलीराइबोसोम तथा क्लोरोफिल का अनिवार्य अंग है। पौधों के अन्दर कार्बोहाइड्रेट संचालन में सहायक है। पौधों में प्रोटीन, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा के निर्माण मे सहायक है। चारे की फसलों के लिए महत्वपूर्ण है।

मैग्नीशियम-कमी के लक्षण - पत्तियां आकार में छोटी तथा ऊपर की ओर मुड़ी हुई दिखाई पड़ती हैं। दलहनी फसलों में पत्तियो की मुख्य नसों के बीच की जगह का पीला पड़ना।

6) गन्धक (सल्फर) के कार्य - यह अमीनो अम्ल, प्रोटीन (सिसटीन व मैथिओनिन), वसा, तेल एव विटामिन्स के निर्माण में सहायक है। विटामिन्स (थाइमीन व बायोटिन), ग्लूटेथियान एवं एन्जाइम 3ए22 के निर्माण में भी सहायक है। तिलहनी फसलों में तेल की प्रतिशत मात्रा बढ़ाता है। यह सरसों, प्याज व लहसुन की फसल के लिये जरूरी है। तम्बाकू की पैदावार 15-30 प्रतिशत तक बढ़ती है।

गन्धक-कमी के लक्षण - नई पत्तियों का पीला पड़ना व बाद में सफेद होना तने छोटे एवं पीले पड़ना। मक्का, कपास, तोरिया, टमाटर व रिजका में तनों का लाल हो जाना। ब्रेसिका जाति (सरसों) की पत्तियों का प्यालेनुमा हो जाना।

7) लोहा (आयरन) के कार्य - लोहा साइटोक्रोम्स, फैरीडोक्सीन व हीमोग्लोबिन का

मुख्य अवयव है। क्लोरोफिल एवं प्रोटीन निर्माण में सहायक है। यह पौधों की कोशिकाओं में विभिन्न ऑक्सीकरण-अवकरण क्रियाओं मे उत्प्रेरक का कार्य करता है। श्वसन क्रिया में आक्सीजन का वाहक है।

लोहा-कमी के लक्षण - पत्तियों के किनारों व नसों का अधिक समय तक हरा बना रहना। नई कलिकाओं की मृत्यु को जाना तथा तनों का छोटा रह जाना। धान में कमी से क्लोरोफिल रहित पौधा होना, पैधे की वृद्धि का रूकना।

8) जस्ता (जिंक) के कार्य - कैरोटीन व प्रोटीन संश्लेषण में सहायक है । हार्मोन्स के जैविक संश्लेषण में सहायक है । यह एन्जाइम (जैसे-सिस्टीन, लेसीथिनेज, इनोलेज, डाइसल्फाइडेज आदि) की क्रियाशीलता बढ़ाने में सहायक है । क्लोरोफिल निर्माण में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

जस्ता-कमी के लक्षण -पत्तियों का आकार छोटा, मुड़ी हुई, नसों मे निक्रोसिस व नसों के बीच पीली धारियों का दिखाई पड़ना।गेहूं में ऊपरी 3-4 पत्तियों का पीला पड़ना। फलों का आकार छोटा व बीज की पैदावार का कम होना। मक्का एवं ज्वार के पौधों में बिलकुल ऊपरी पत्तियाँ सफेद हो जाती हैं। धान में जिंक की कमी से खैरा रोग हो जाता है। लाल, भूरे रंग के धब्बे दिखते हैं।

9) ताँबा (कॉपर) के कार्य - यह इंडोल एसीटिक अम्ल वृद्धिकारक हार्मोन के संश्लेषण में सहायक है। ऑक्सीकरण-अवकरण क्रिया को नियमितता प्रदान करता है। अनेक एन्जाइमों की क्रियाशीलता बढ़ाता है। कवक रोगो के नियंत्रण में सहायक है।

ताँबा-कमी के लक्षण - फलों के अंदर रस का निर्माण कम होना। नीबू जाति के फलों में लाल-भूरे धब्बे अनियमित आकार के दिखाई देते हैं। अधिक कमी के कारण अनाज एवं दाल वाली फसलों में रिक्लेमेशन नामक बीमारी होना।

10) बोरान के कार्य - पौधों में शर्करा के संचालन मे सहायक है। परागण एवं प्रजनन क्रियाओ में सहायक है। दलहनी फसलों की जड़ ग्रन्थियों के विकास में

सहायक है। यह पौधों में कैल्शियम एवं पोटैशियम के अनुपात को नियंत्रित करता है। यह डीएनए, आरएनए, एटीपी पेक्टिन व प्रोटीन के संश्लेषण में सहायक है **बोरान-कमी के लक्षण -** पौधे की ऊपरी बढ़वार का रूकना, इन्टरनोड की लम्बाई का कम होना। पौधों मे बौनापन होना। जड़ का विकास रूकना। बोरान की कमी से चुकन्दर में हर्टराट, फूल गोभी मे ब्राउनिंग या खोखला तना एवं तम्बाखू में टाप सिकनेस नामक बीमारी का लगना।

11) मैंगनीज के कार्य - क्लोरोफिल, कार्बोहाइड्रेट व मैंगनीज नाइट्रेट के स्वागीकरण में सहायक है। पौधों में ऑक्सीकरण-अवकरण क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है। प्रकाश संश्लेषण में सहायक है।

मैंगनीज-कमी के लक्षण - पौधों की पत्तियों पर मृत उतको के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। अनाज की फसलों में पत्तियाँ भूरे रंग की व पारदर्शी होती है तथा बाद मे उसमे ऊतक गलन रोग पैदा होता है। जई में भूरी चित्ती रोग, गन्ने का अगमारी रोग तथा मटर का पैंक चित्ती रोग उत्पन्न होते हैं।

12) क्लोरीन के कार्य - यह पर्णहरिम के निर्माण में सहायक है। पोधो में रसाकर्षण दाब को बढ़ाता है। पौधों की पंक्तियों में पानी रोकने की क्षमता को बढ़ाता है। **क्लोरीन-कमी के लक्षण -** गमलों में क्लोरीन की कमी से पत्तियों में विल्ट के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। कुछ पौधों की पत्तियों में ब्रोन्जिंग तथा नेक्रोसिस रचनायें पाई जाती हैं। पत्ता गोभी के पत्ते मुड़ जाते हैं तथा बरसीम की पत्तियाँ मोटी व छोटी दिखाई पड़ती हैं।

13) मालिब्डेनम के कार्य - यह पौधों में एन्जाइम नाइट्रेट रिडक्टेज एवंनाइट्रोजिनेज का मुख्य भाग है। यह दलहनी फसलों में नत्रजन स्थिरीकरण, नाइट्रेट एसीमिलेशन व कार्बोहाइड्रेट मेटाबालिज्म क्रियाओ में सहायक है। पौधों में विटामिन-सी व शर्करा के संश्लेषण में सहायक है।

मालिब्डेनम-कमी के लक्षण - सरसों जाति के पौधो व दलहनी फसलों में मालिब्डेनम की कमी के लक्षण जल्दी दिखाई देते हैं। पत्तियों का रंग पीला हरा या पीला हो जाता है तथा इसपर नारंगी रंग का चितकबरापन दिखाई पड़ता है। टमाटर की निचली पत्तियों के किनारे मुड़ जाते हैं तथा बाद में मोल्टिंग व नेक्रोसिस रचनायें बन जाती हैं। इसकी कमी से फूल गोभी में व्हिपटेल एवं मूली मे प्याले की तरह रचनायें बन जाती हैं। नीबू जाति के पौधो में मॉलिब्डेनम की कमी से पत्तियों मे पीला धब्बा रोग लगता है।